बुन्देलखण्ड में गोसांई सत्ता के उदय एवं पतन का इतिहास

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी
के अंतर्गत

इतिहास विषय में पीएच.डी. उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध प्रबंध (Thesis)

2002
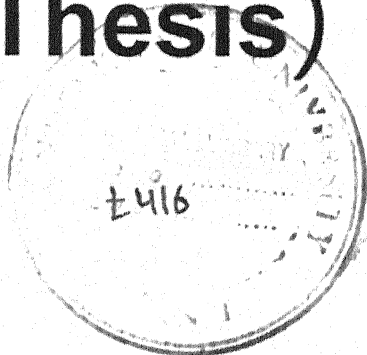
शोध निर्देशक
डॉ. कैलाश खन्ना
एम.ए., पीएच.डी.
रीडर, इतिहास विभाग
बुन्देलखंड कॉलेज, झाँसी

प्रस्तुतकर्ता
श्याम जी कृष्ण मिश्रा
355/2, सिविल लाइन
झोकन बाग, झांसी
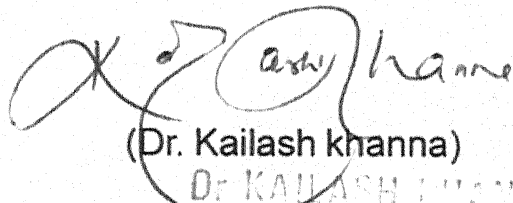
Dr. Kailash khanna
M. A., Ph. D.
Reader, Dept. of History
Bundelkhand College, Jhansi

Residence :
64, Civil Lines
Jhansi - 284001
Ph. : 0517-2471100

CERTIFICATE

This is to certify that the Research Work embodied in the thesis submitted for the degree of "Doctor of Philosophy" (Ph. D.) in History, entitled. **"History of the Rise and Fall of Gosain Power in Bundelkhand (बुन्देलखण्ड में गोसांई सत्ता के उदय एवं पतन का इतिहास)"** is the original research work done by Shyam Ji Krishna Mishra.

He has worked under my guidance and supervision for the required period.

(Dr. Kailash khanna)
Dr KAILASH KHANNA
... Ph D.
READER DEPT. OF HISTORY
Bundelkhand College, Jhansi

अनुक्रमाणिका

प्राक्कथन

18वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में बुन्देलखंड के अंदर गोसाई- शक्ति का उद्‌भव एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना हैं। उत्तर मुगलकालीन युग में बुन्देलखंड में राजनैतिक अस्थिरता का लाभ उठाकर बुन्देले, मराठे और गोसांई इस क्षेत्र में अपनी प्रभुता स्थापित करने का प्रयास कर रहें थे। इसी क्रम में गोसांइयों ने अपने राजनैतिक चातुर्य का परिचय देते हुये बुन्देलखंड में अपनी सत्ता स्थापित की। इस राजवंश का राजनैतिक उदय 1742 ई0 मं राजेन्द्र गिरि के झांसी में दुर्गाध्यक्ष (किलेदार) बनने के बाद हुआ। इस वंश में राजेन्द्र गिरि, अमराव गिरि और अनूप गिरि जैसे पराक्रमी योद्वा हुये जो न केवल युद्व क्षेत्र में ही अपनी कुशलता के लिये प्रख्यात हुये बल्कि राजनैतिक सौदेवाजी तथा कूटनीति में सिद्वहस्त थे।

इनमें सबसे बहादुर और कूटनीतिज्ञ अनूप गिरि गोसांई था जिसनें अपनी बहादुरी से अबध के नबाब शुजाउद्‌दौला की बक्सर युद्व में रक्षा की ओर नवाव अवध से "हिम्मत बहादुर" की उपाधि प्राप्त की।

"हिम्मत बहादुर" बुन्देलखंड की माटी का ही धरती पुत्र था। वह यहॉ की ऊबड़–खाबड़ जमीन और पहाड़ी दुर्गम इलाकों से भली भांति परिचित था। उसकी हार्दिक इच्छा थी कि अपने इस क्षेत्र में वह गोसांइयों के लिये एक अलग राज्य स्थापित कर सके। अपने इस उद्‌देश्य की प्राप्ति के लिये उसने शुजाउद्‌दौला की सेना में नौकरी की तथा बाद में वह भरतपुर के राजा जवाहर सिंह एवं रघुनाथ दादा की सेना में रहा और बाद में महाद जी सिंधिया आदि समकालीन राजओं से राजनैतिक सौदेवाजी की।

इसी समय अली बहादुर मराठों की ओर से बुन्देलखंड में पेश्वा बाजीराव के क्षेत्र को पुनगर्ठित कर रहा था। हिम्मत बहादुर ने उससे संधिकर ली और दोनों ने यह तय किया कि वे दानों मिलकर बुन्देलखंड पर विजय प्राप्त करेंगे तथा विजित क्षेत्रों का आधा–आधा बटवारा कर लेंगे। जिस समय इनका विजय अभियान पूरा होने वाला था उसी समय अली बहादुर की मृत्यु हो गयी।

इसी समय अंग्रेजों ने बुन्देलखंड में प्रवेश किया क्योंकि वे इस सामरिक महत्व वाले क्षेत्र पर अपना नियंत्रण स्थातिपत करना चाहते थे। अपने ध्येय की प्राप्ति के लिये हिम्मत बहादुर ने तत्कालीन परिस्थिति को देखकर अंग्रेजों से संधि कर ली और बुन्देलखंड में ब्रिटिश सत्ता स्थापित करनें में पूरी मदद की। इसके प्रतिफल में अंग्रेजों से हुयी शाहपुर की संधि के अनुसार उसे यमुना के किनारे की जागीरें प्रदान कर दी गयी। इस प्रकार बुन्देलखंड में स्वतन्त्र राज्य निर्माण का उसका उद्‌देश्य पूरा हुआ।

राजनैतिक महत्वाकांक्षाओं के साथ ही साथ गोसांइयों ने बुन्देलखंड में अनेक महत्वपूर्ण मंदिर, मठ, गढ़ी और समाधि मन्दिरों का निर्माण कराया। उनके शासन काल में इस क्षेत्र में चित्रकला का स्वर्णिम विकास हुआ जो उनकी कला प्रियता का श्रेष्ठ उदाहरण है। इस प्रकार अपने युद्व कौशल से साधुओं–सन्यासियों के इस नागा गिरोह ने यह साबित कर दिया कि वे धार्मिक रीति–रिवाजों के अतिरिक्त क्षत्रिय धर्म का भी सफलतापूर्वक निर्वाक कर सकते है। मैनें अपने इस शोध ग्रंथ में बुन्देलखड़ के इस प्रमुख वंश पर डाला है ताकि इनके अनछुये पहलुओं को जन मानस के सामने लाया जा सके।

"बुन्देलखंड में गोसांई सत्ता के उदय तथा पतन का इतिहास" नामक उपरोक्त शोधग्रंथ को में परमपिता परमेश्वर, मां वैष्णों दवी की कृपा एवं पूज्य गरूदेव संत श्री रविशंकर महाराज (रावतपुरा सरकार) के आशीर्वाद से पूरा कर पाया हूँ। समय पर शोध ग्रंथ पूरा करने के लिये स्वामिनी अमिता नंदा का आशीर्वाद भी मेरे साथ रहा।

उपरोक्त शोधग्रंथ को तैयार करने में बुन्देलखड़ कालेज इतिहास विभाग के रीडर डा. कैलाश खन्ना ने मेरा मार्गदर्शन किया और पांडुलिपियों को पढ़कर उसमें महत्वपूर्ण प्रभाव दियो जिसके आभाव में मेरा यह कार्य पूरा करना संभव नहीं था। मैं उनका हदय से आभारी हूॅ। बुन्देलखंड महाविद्यालय इतिहास विभाग के अध्यक्ष डा. एस.पी. पाठक द्वारा दिये गये मार्ग दर्शन के लिये में उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता हूॅ।

"जीवन की दौड़" में बच्चों के जीत जाने और स्वयं के हार जाने की कामना करने वाले अपने पूज्य पिता श्री विष्णु दत्त मिश्रा एवं मॉ श्रीमती विमला मिश्रा के प्रति में हार्दिक रूप से कृतज्ञ हूॅ जिनका आर्शीवाद मेंरे शोध को पूरा करने में सहायक बना। मैं अपनी बहिन मृणालिनी (मनु) और बहनोई रवीन्द्र चतुर्तेदी के प्रति भी अपनी कृतज्ञता व्यक्त करता हूॅ जिन्होंने इस कार्य को पूरा करने में हर संभव मदद की। इसके अलावा में अपने भाई–भाभी ज्योतिर्मय–नीलम मिश्रा और भतीजों सुगन्ध मिश्रा एवं अनादि मिश्रा का सहयोग नहीं भुला सकता जिन्होंने हर क्षण मुझे प्रेरित किया।

उत्तर प्रदेश की राजस्व सचिव श्रीमती स्तुति नारायण कक्कड़ (I.A.S) का भी में आभारी हूँ जिन्होंने विभिन्न दुर्लभ गजेटियर्स और पांडुलिपियां राज्य सचिवालय से मुझे उपलब्ध करायीं। मैं राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली के अधिकारियों एवं कर्मचारियों का भी आधार व्यक्त करना चाहता हूँ जिन्होंने इस कार्य के लिये अध्ययन सामग्री मुझे उपलब्ध करायी।

मैं राजकीय महिला महाविद्यालय, झांसी की प्रवक्ता नीलम टंडन का भी आभारी हूँ जिन्होनें विभिन्न अंग्रेजी पुस्तकों व पत्रों का हिन्दी अनुवाद कराने में मरी मदद की। बुन्देलखंड महाविद्यालय के उप पुस्तकालयाध्यक्ष अरविन्द सिंह परमार, जिला पुस्तकालयाध्यक्ष राकेश पाठक एवं कैटलागर श्रीमती शकीला बानों का आभारी हूँ जिन्होनें मुझे इस शोध कार्य में संबंधित आवश्यक सामाग्री एकत्रित करने में मदद की।

इसके अलावा में बुन्देलखंड विश्वविद्यालय झाँसी केन्द्रीय पुस्तकालय की शालिनी, कंचन, कमलेश एवं मनोज का भी आभार प्रगट करता हूँ जिन्होनें मुझे महत्वपूर्ण सामग्री उपलब्ध करवायी।

विशिष्ट सहयोग के लिये में श्रीमती दीप्ति गुलाटी का आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने शोध कार्य पूरा करने के लिये मुझे प्रोत्साहित किया। शोध कार्य पूरा करने में प्रोत्साहन देने के लिये में दैनिक अमर उजाला, झाँसी के स्थानीय संपादक श्री वंशीधर मिश्रा के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ क्योंकि उनके सहयोग के बिना इसे पूरा करना सभंव नहीं था। इसके अलावा शोध ग्रंथ पूरा करने में महत्वपूर्ण सामग्री जुटाने के लिये मै इतिहासकार डा. महेन्द्र वर्मा,

वयोवृद्ध इतिहास लेखक जानकीशरण वर्मा, हरगोविन्द कुशवाहा, जे.पी. सोनी, विवेक खरे, डा. आर. के. गौतम, सुरेश पुरी (उमराव गिरि के वशंज) श्लोक यादव, रामबाबू साहू, अरुण गुप्ता एवं फोटोग्राफर विजय कुशवाहा का आभारी हूँ। इस शोध ग्रथं को पूरा करने में कपिल सिंह, आनन्द और संजय सक्सैना के योगदान को भी मैं नहीं भुला सकता हूँ जिनकी मदद के बिना इसे समय से पूरा करना संभव नहीं था।

(श्याम जी कृष्ण मिश्रा)
355/2, सिविल लाइन
झोकन बाग, झांसी

अध्याय – प्रथम

बुन्देलखण्ड की भौगोलिक स्थिति एवं ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि

अध्याय प्रथम

बुन्देलखण्ड की भौगोलिक स्थिति एवं ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि

(अ) भौगोलिक स्थिति

भारत वर्ष के मध्य में स्थित भूभाग ही बुन्देलखण्ड नाम से जाना गया। बुन्देलखण्ड को मध्य भारत का वह भाग मानते है जिसकी पूर्वी सीमा बघेलखण्ड से मिलती है।[1] इसके उत्तर में यमुना, दक्षिण में नर्मदा, पश्चिम में चंबल एवं पूर्व में स्थित टोंस नदी इस क्षेत्र की प्राकृतिक सीमाओं का निर्धारण करती है।[2] यह उत्तर अक्षांश 23–24 अंश और पूर्वी देशान्तर 77–58 अंश तथा के मध्य स्थित है। भौगोलिक रूप से कर्क रेखा बुन्देलखण्ड के दक्षिण में पड़ती है अतः यह समशीतोष्ण कटिबन्ध के गर्म में पड़ता है।[3]

इसमें दक्षिण की ओर सागर एवं जबलपुर संभाग सम्मिलित है और दक्षिण पूर्व में बघेलखण्ड तथा मिर्जापुर की पहाड़ियां बुन्देलखण्ड की सीमा का निर्धारण करती हैं।[4] गंगा –जमुना के दक्षिण में बेतवा नदी से लेकर मिर्जापुर तक का भूभाग भी बुन्देलखण्ड में शामिल था।

---

1. इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका; पृष्ठ–409
2. इर्विन विलियम; लेटर मुगल्स –भाग2 1922 कलकत्ता
3. विन्ध्य भूमि (दिसंवर 1946) पृष्ठ–9
4. एटकिन्सन ई.टी; स्टैटिस्टिकल डिस्क्रप्टिव एंड हिस्टारिकल एकाउण्टस आफ नार्थ वेस्टर्न प्राविन्सेज आफ इंडिया, वाल्यूम–1 (बुन्देलखण्ड) इलाहाबाद 1874, पृष्ठ–2

नर्मदा के निकटवर्ती सागर, चन्देरी तथा बिलहरी जिले भी इस क्षेत्र में शामिल थे।[1] बुन्देलखण्ड दस नदियों अर्थात दशार्ण क्षेत्र था। इस क्षेत्र में जालौन के ग्राम जगम्मनपुर के समीप चम्बल, पहूज, काली सिंध और क्वारी नदियों का संगम यमुना से होता है। इस स्थान को पचनंद भी कहा जाता है। इस क्षेत्र की शेष पांच नदियों में बेतवा (बेत्रवंती) मंदाकिनी, केन, तमसा, और धसान है। इस कारण इस क्षेत्र को 'दशार्ण' नाम से जाना गया ।

इस क्षेत्र की सीमाओं के अनुसार ग्वालियर राज्य के भिंड, ग्वालियर, गिर्द, नरवर, ईसागढ़, और भेलसा (बिदिशा) के जिले अथवा उनके भाग और इसी प्रकार भूपाल राज्य के उत्तरी और पूर्वी निजामतों के भाग तथा सागर, दमोह, एवं जबलपुर जिले अथवा उनके भाग, रीवा का पश्चिमी क्षेत्र और संयुक्त प्रांत के काशी के निकट से मिर्जापुर, इलाहाबाद, बांदा, हमीरपुर, जालौन तथा झांसी जिले अथवा उसके भाग को बुन्देलखण्ड में शामिल किया गया। अंग्रेजी शासनकाल में बुन्देलखण्ड में ग्यारह जिले एवं उनकी रियासतों को शामिल किया गया।

इस क्षेत्र में बांदा, झांसी, ललितपुर, जालौन एवं हमीरपुर के अलावा ओरछा, दतिया, समथर, अजयगढ़, अलीपुर, अष्टगढ़ी, ढुरवई, टोड़ी फतेहपुर, बिजना, बंका पहाड़ी, बरौधा, बाबनी, बिजावर, चरखारी, कालिंजर की चौबियाना जागीर, भैसौंधा, जसो, जिगनी, खनियाधाना, बुगासी, रिबही, पन्ना एवं सरीला आदि अनेक छोटी बड़ी रियासतें शामिल थी। अंग्रेजी शासनकाल में बुन्देलखण्ड में उत्तर प्रदेश एवं

---

1. कनिंघम; एसिएन्ट ज्योग्राफी आफ इंडिया पृष्ठ 550–553

मध्य प्रदेश के 11 जिलों को शामिल माना गया। इसका उल्लेख विभिन्न जिलों के गजेटियरों किया गया है। अपनी भौगोलिक स्थिति तथा पठारी स्वरूप के कारण यह क्षेत्र सामरिक दृष्टि हमेशा महत्वपूर्ण रहा।

नदियां

बुन्देलखण्ड पर्वतीय प्रदेश है अतः यहां नदी नालों की अधिकता है। पौराणिक काल से ही बुन्देलखण्ड को दस नदियों वाला प्रदेश अर्थात 'दशार्ण' माना गया है।[1] यहां की प्रमुख नदियों में यमुना, चम्बल, सिन्धु, बेतवा, धसान, केन, बाधेन, पैंसुनी, टोंस, महानदी और नर्मदा शामिल थी।[2] यह नदियां इस क्षेत्र को चारों ओर से घेरे रहती है। इन नदियों का प्रवाह तेज है। आमतौर क्षेत्र की सभी नदियां उत्तर–पूर्वी दिशायें बहती है। इनमें से केवल केन नदी खेने योग्य है।[3]

यमुना :

यह इस क्षेत्र की प्रमुख नदी है। यमुना नदी बुन्देलखण्ड के जालौन, हमीरपुर और बांदा बहती है। इसमें चंबल, सिंध, बेतवा, धसान, बाधैन, केन और पैंसुनी आदि नदियां आकर मिलती है। यह जालौन की उत्तर–पश्चिम सीमा में जगम्मनपुर में सितौरा गांव के

---

1. महाभारत : विराट पर्व 1–9
2. एटकिन्सन ई. टी. स्टेटिस्टिकल डिस्क्रिप्टिव एंड हिस्टोरिकल एकाउंटस आफ नार्थ वेस्टर्न प्राविन्सेज आफ इंडिया, वाल्यूम–1, पृष्ठ 55–56
3. इम्पीरियल गजेटियर आफ इंडिया, भाग–2 पृष्ठ 266

निकट भिंड जिले से आती है। सितौरा के निकट सिंधु नदी इसमें मिलती है। बांदा के उत्तर–पूर्व सीमा से होती हुयी यमुना नदी गंगा में मिल जाती है। इसका प्राचीन नादम कालिंदी है।

चम्बल :

यह नदी इंदौर में मऊ छावनी के निकट जनपो के पहाड़ से निकली है। यह इन्दौर, ग्वालियर, सीता मऊ, झालवार और राजपूताने की कई रियासतों से होकर गुजरती है। यह नदी इटावा से 25 मील दक्षिण–पूर्व में यमुना में आकर गिरती है। इसका प्राचीन नाम 'चमर्णवती' था।

सिन्धु :

यह नदी मालवा की टोंक रियासत में सिरौंज परगने के नेनवास गांव से निकली है। यह नदी टोंक, ग्वालियर, एवं दतिया होती हुयी जालौन के जगम्मनपुर में यमुना में मिलती है।

बेतवा :

यह नदी भोपाल से निकली है। इसे भोपाल ताल से निकला हुआ माना जाता है। इसे बुन्देलखण्ड की गंगा कहा जाता है। यह नदी मालवा से होकर बुन्देलखण्ड में दक्षिण से उत्तर की ओर बहती हुयी यमुना में मिल जाती है। प्राचीन काल से इसे 'मालवा नदी' कहा जाता था।[1]

इस नदी के किनारे बिदिशा, देवगढ़, तथा चंदेरी आदि प्राचीन

---

1. दीवान प्रतिपाल सिंह; बुन्देलखण्ड का इतिहास (प्रथम भाग) संवत् 1984, पृष्ठ 26

ऐतिहासिक नगर बसे हुए है। भोपाल, सागर, ग्वालियर, ललितपुर, झांसी, ओरछा और जालौन होती हुयी यह नदी हमीरपुर से 6 मील दूर यमुना नदी में मिल जाती है।

धसान :

यह नदी भोपाल के सिरमऊ पहाड़ी से निकली है। यह भोपाल, सागर, ओरछा, बिजावर, बीहट, जिगनी और गरौंली होती हुयी झांसी के ग्राम चंदवारी के पास बेतवा में मिल जाती है। इसका प्राचीन नाम 'दर्शाण' था।

केन :

यह नदी जबलपुर के पश्चिमी कैमूर पहाड़ों से निकलती है। यह नदी, पन्ना, छतरपुर, चरखारी तथा गौरीहार होती हुयी बांदा के निकट यमुना में मिल जाती है। इस नदी का प्राचीन नाम 'कर्णवती' था।

बागै :

यह नदी पन्ना के गौरारी गांव के निकट पहाड़ से निकलती है। और बांदा के पास यमुना नदी में मिल जाती है।

पैसुनी (मंदाकिनी) :

यह नदी बांदा के पास पाथर कछार से निकलती है। इसे मंदाकिनी नदी के नाम से जाना जाता है। सीतापुर और चित्रकूट इसी नदी के तट पर है। इसका प्राचीन नाम मंदाकिनी है। इसे पयस्वनी नाम से भी जाना जाता है।

टौंस :

टौंस (तमसा) नदी मैहर रियासत में पहाड़ों से निकलती है। इसका उदगम स्थान तमसाकुंड माना जाता है अतः इसे तमसा नदी नाम से भी जानते है।

महानदी :

यह मंडला से निकलती है। जबलपुर और रीवा होती हुयी यह नदी सोन नदी में मिल जाती है।

नर्मदा नदी :

यह नदी जबलपुर के दक्षिणी भाग से निकली है। बघेलखण्ड के अमरकंटक पहाड़ से निकलकर यह नदी नरसिंहपुर की ओर चली जाती है। इसके उत्तर तट पर दमोह, सागर और भोपाल एवं दक्षिणी तट पर नरसिंहपुर एवं होंशगाबाद बसे हुए हैं। यह नदी भारतवर्ष के बीच में उत्तरी तथा दक्षिणी भारत की विभाजक है।

पहाड़

यह क्षेत्र पहाड़ों से घिरा हुआ है। बुन्देलखण्ड में मैदानी भाग में बहुत सी पर्वत श्रेणियां है। इन पर्वत श्रेणियों को विन्ध्याचल, पन्ना तथा भांडेर तीन भागों में विभक्त किया गया है[1]। इस क्षेत्र में कैमूर की पहाड़ियां भी प्रसिद्ध है। बुन्देलखण्ड का प्रमुख पर्वत विन्ध्याचल पुराणों में अपनी विशेषताओं के लिये प्रसिद्ध है। इस क्षेत्र में चार प्रकार की पर्वत श्रेणियां विद्यमान है।[2]

विन्ध्याचल पर्वत :

यह पर्वत दतिया राज्य के सेंवढ़ा से प्रारंभ होकर दक्षिण–पश्चिम की ओर नरवर तक जाता है। इस स्थान से दक्षिण–पूर्व की ओर मुड़कर विन्ध्याचल पर्वत श्रेणी कालिंजर, अजयगढ़, बरगढ़, विन्ध्यवासिनी (मिर्जापुर), सूरजमहल और राजमहल से होकर गंगा के किनारे पर जाकर समाप्त होता है।

पन्ना श्रेणी :

यह पर्वत दक्षिणी विन्ध्याचल से प्रारंभ होकर बांदा के कर्वी स्थान तक जाता है। यह लगभग दस मील चौड़ा बलुई चट्टानों से बना है।

भाण्डेर श्रेणी :

यह पर्वत पन्ना श्रेणी के दक्षिण –पश्चिम से प्रारंभ होता है।

---

1. फ्रैंकलिन, मेमॉयर आफ बुन्देलखण्ड एवं इम्पीरियल गजेटियर आफ इंडिया भाग–2, पृष्ठ–264
2. विन्ध्य भूमि, दिसंबर 1946, पृष्ठ–9

लुहार गांव के बेसिन के पास इसमें चूने की चट्टाने हैं। इसमें पठारी प्रदेश की बाहरी सीमा पर कहीं–कहीं सख्त चट्टान है।

कैमूर श्रेणी :

यह पर्वत श्रेणी विन्ध्याचल श्रेणी का ही एक भाग है। यह कर्बी से प्रारंभ होकर भांडेर के पहाड़ों के समानांतर जबलपुर और दमोह तक जाती है और यहां से पूर्व की ओर मुड़ जाती है।

इनके अलावा बहुत से छोटे–बड़े पहाड़ इस क्षेत्र में फैले हुए है जिन्हें 'टौरिया' या 'घाटियां' कहते हैं।[1] इनमें हमीरपुर की नौगढ़, महेश्वर, अजनर, और कुलपहाड़ श्रेणी, जबलपुर की बरियागढ़ श्रेणी, सागर की मालथौन, राहतगढ़, तथा लुधौरा बंडा श्रेणी और दमोह की सुनाड़ घाटी, भोंड़ला श्रेणी तथा मानगढ़ पर्वत प्रमुख है। झांसी में अमझरा की घाटी, मदनपुर घाटी और भसनेह पहाड़ तथा ग्वालियर की मायापुर घाटी प्रमुख पर्वत श्रेणियां है।

इसके अलावा छोटे–बड़े पहाड़ों में बांदा का वामेश्वर, चित्रकूट, कामतनाथ, बांदेर, नीलकंठ पर्वत हमीरपुर का मड़िया, काली झांसी का नारहट, कटेरा और लखनगिर, दमोह का कबुमार एवं हीरापुर, सागर की नाहर मऊ, जबलपुर की मदन महल, भिटारी व भैंसाकुंड, ओरछा की हरजुवा कारी, रोपा, भौंरा व मचरार, पन्ना की मदारदूंगा, भंडेर पहाड़ी एवं नैनगिरि, अजयगढ़ की बिला, चंदला, बजरंगगढ़, देवपहाड़, और मुड़जा, चरखारी का रंजीता पहाड़, बिजावर का लहर और चंदलाख और छतरपुर की किशनपुर, गुरैया, फाटा और बमरबेनी

---

1. दीवान प्रतिपाल सिंह, बुन्देलखण्ड का इतिहास (प्रथम भाग) संवत 1985, पृष्ठ 18

पर्वत श्रेणियां इस क्षेत्र में फैली हुयी है। इस क्षेत्र में छोटी पर्वत श्रेणियां को 'घाटी' कहा जाता है। और दो पहाड़ों के बीच के रास्ते को 'खंदिया' कहते है।

भूमि

इस क्षेत्र के मैदानी भाग में विभिन्न प्रकार की मिट्टियाँ पायी जाती है।. *'मार'* भूमि काली होती है जो थोड़े पानी में ही गाली हो जाती है। यह बुन्देलखण्ड की सबसे अच्छी मिट्टी की श्रेणी में आती है।[1] वर्षा में इसमें चलना कठिन होता है और सूखने पर यह भूमि कठोर हो जाती है। *'रोनीमार'* भूमि दोयम दर्जे की होती है। यह हल्के काले रंग की होती है। *'काबर'* भूमि काले रंग की होती है। *'पडुवा'* भूमि पीली और काले रंग की होती है। *'राकड़'* भूमि हल्की लाल होती है और इसमें पत्थर के छोटे–छोटे टुकड़े मिलते है। *'हड़काबर'* भूमि को जोतते समय बड़े–बड़े ढेले बन जाते है।

दो पहाड़ों के बीच लाल रंग की *'दौन'* भूमि होती है। यह राकड़ क्षेत्र की तरह नही झड़ती और कम पानी बरसने पर नहीं सूखती है। *'दो मटिया'* भूमि मार भूमि और पडुवा भूमि का मिश्रित रूप है। यह भूमि मोटी होती है।

इसके अलावा *'कछार' भूमि* इस क्षेत्र की उत्तम भूमि मानी जाती है। इस प्रकार की मिट्टी बुन्देलखण्ड के मैदानी भाग, तालाबों और नदियों के मुहानों पर पायी जाती है। उत्तर में यमुना से लगे बांदा, जालौन और हमीरपुर में मार और काबर अधिकतर से पायी जाती है।

---

1. दीवान प्रतिपाल सिंह (वही) पृष्ठ–18, 20

दक्षिण की ओर बढ़ने पर पडुवा और राकड़ के भूभाग अधिक होते जाते है। इस क्षेत्र में कहीं–कहीं ऊसर भूमि भी मिलती है। इसमें चूना अधिकता में मिला रहता है और यह खेती के लिये अयोग्य होती है।[1] इस प्रकार ऊपजाऊपन की दृष्टि से इस क्षेत्र की मिट्टी अच्छी नहीं मानी जा सकती थी।

वन

बुन्देलखण्ड के मैदानी भाग में बहुतायत में जंगल पाये जाते है। यहां बबूल, छेवला, और झरबेरी आदि झाड़ीदार पौधे अधिकांश क्षेत्रों में उग जाते है। पथरीली और ऊंची नीची भूमि पर वृक्ष लगे रहते है। यहां साल, सागौन, तेंदू, महुआ, बांस, चन्दन, इमली, आम, चिरौजी, ताड़, खजूर, बबूल, बेर, सेमल, खैर, चंदन और जामुन आदि के वृक्ष प्रमुखता से पाये जाते हैं। इस क्षेत्र में वनों की अधिकता होने के कारण वन में पाये जाने वाले खनिज पदार्थ यहां प्रचुर मात्रा में मिलते है। इनमें लाख, गौंद, मोम, शहद, सफेद मूसली, कत्था, महुआ, आंवला और हर्र बहेड़ा प्रमुख है।[2] इस क्षेत्र में कांस भी अधिकता में पायी जाती है। यहां के वनों में शेर, तेंदुआ, चीता, भालू, भेड़िया, बिगना, गीदढ़, लड़ैया, जंगली कुत्ता, खरगोश, सुअर, मोर और सिही आदि जानवर पाये जताते है। इसके अलावा हिरन, नीलगाय और चीतल भी इस क्षेत्र में पाये जाते है।

---

1. स्टेटिस्किल डिस्किप्शन एंड हिस्टोरिकल एकांट आफ द नार्थ वेस्ट प्रोविन्सेज आफ इंडिया भाग 1, (बुन्देलखण्ड) पृष्ठ–41, झांसी गजेटियर, पृष्ठ–5, 9, जालौन गजेटियर पृष्ठ–1, 5, हमीरपुर गजेटियर पृष्ठ–1, 6, सागर गजेटियर पृष्ठ–1, 9, ओरछा गजेटियर पृष्ठ–1, 4, पन्ना गजेटियर पृष्ठ–1, 5, दतिया गजेटियर 1–2

2. जोशी ईला बसंती; डिस्ट्रिक गजेटियर, झांसी, 1965, लखनऊ पृष्ठ–12

खनिज पदार्थ

इस क्षेत्र में तहदार चट्टाने विशेष रूप से पायी जाती है। इनकी सबसे पुरानी तह 'धारवाड़' में लोहा, तांबा, मैग्नीज, सीसा और सोना पाया जाता है। बुन्देलखण्ड में हीरा, कोयला, बिल्लौर, अभ्रक, तांबा, एल्युमिनियम, चांदी और सीसा भी प्राप्त होता है। इनमें *हीरा* छतरपुर, पन्ना एवं अजयगढ़ क्षेत्रों में, *लोहा एवं सीसा* टीकमगढ़, छतरपुर एवं बिजावर में, *चूना* बिजावर, पन्ना, जबलपुर एवं दतिया में *चांदी* टीकमगढ़, सूरजपुर, हटा एवं नारायणपुर में, *अभ्रक* टीकमगढ़ में, गौरा पत्थर पन्ना में, *निसाव पत्थर* लतितपुर, सागर एवं पन्ना में और नमक चिरगांव के पास औपारा में प्रमुख रुप से होता था। वर्षा ऋतु में पहाड़ियों की तलहटी में पेट्रोलियम जैसा चिकना द्रव पदार्थ दिखता था।

इस प्रकार बुन्देलखण्ड की भौगोलिक स्थिति एवं प्राकृतिक संसाधनों को इस क्षेत्र की आर्थिक उन्नति के संदर्भ में यदि समीक्षा की जायें तो स्प्ष्ट होगा कि यहां की ऊबड़ खाबड़ जमीन सिंचाई सुविधा के अभाव में वर्षा ऋतु पर निर्भर करती थी। यदि वर्षा औसत से कम होती थी तो खरीफ की उपज कम प्राप्त होती थी तथा साथ में रबी का उत्पादन भी प्रभावित होता था।

इसके अतिरिक्त भूमि की उर्वरता के अभाव में कृषकों को प्रायः अपनी भूमि को समय–समय पर परती भी छोड़ना पड़ता था अन्यथा उपज प्रभावित होती थी। वनों से जंगली लकड़ी या इमारती लकड़ी प्राप्त होने के कारण निःसंदेह यहां के निवासियों को अपनी आवश्यकता की पूर्ति करने का अवसर मिलता था। यहां जो खनिज पदार्थ उपलब्ध

थे उनमें अधिकांश पहाड़ों से प्राप्त पत्थर कंक्रीट के रूप में उपयुक्त माने जाते थे। गोरा पत्थर या अन्य खनिज जो उपलब्ध रहे हैं उनका तत्कालिक शासकों द्वारा सुविधाओं के अभाव में आर्थिक रूप से दोहन नहीं किया जा सका।

इस क्षेत्र में बहने वाली प्रायः सभी नदियां वर्षा ऋतु में तेज धार से बहती रहीं जो भूमि का कटाव करने में सहायक होती थी। कुछ ही नदियां ऐसी थी जिन्हें नौका द्वारा यातायात के लिये उपयुक्त पाया जाता था।

पथरीले क्षेत्र से गुजरने के कारण इनकी तलहटी में पत्थर पर्याप्त मात्रा में विद्यमान थे जो नौकायन के लिये उपयुक्त नहीं थे। इस कारण इन नदियों का समुचित उपयोग सिंचाई आदि के लिये नहीं किया जा सका। अतः इन प्राकृतिक संसाधनों का इस क्षेत्र के आर्थिक जीवन के उन्नयन में तात्कालिक शासकों द्वारा पर्याप्त दोहन नहीं हुआ अतः आर्थिक पिछड़ापन बना रहा।

(ब) ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

बुन्देलों के उत्कर्ष के समय 14 वीं शताब्दी में इस क्षेत्र को बुन्देलखण्ड के नाम पहचाना गया। इसके पूर्व में इसे, दशार्ण, चेदि जेजाकभुक्ति, विन्ध्येलखंड और मध्य देश आदि विभिन्न नामों से पुकारा गया।[1] बुन्देलखण्ड क्षेत्र में विन्ध्याचल पर्वत की मीलों लंबी पर्वत श्रृंखलायें फैली हुयी है। इस कारण प्रतीत होता है कि विन्ध्य पर्वत वाली भूमि (खंड) को विन्ध्येलखड कहा गया जो आगे चलकर ऊपभ्रंश होते हुये बुन्देलखण्ड हो गया।

इसके अलावा बुन्देला राजाओं के शासन वाला क्षेत्र होने के कारण भी इस क्षेत्र को बुन्देलखण्ड के नाम से उल्लेखित किया गया।[2] बुन्देले इस क्षेत्र में निवास करने वाली महत्वपूर्ण जाति थी। बुन्देला शासकों का संबंध राजा पंचम से माना गया जो काशी (बनारस) के गहरवार राजाओं के वंशज थे।[3] विन्ध्य क्षेत्र के शासक होने के कारण यहां के शासको विन्ध्येला अथवा बुन्देला कहा गया।[4]

इसके पूर्व इस क्षेत्र को विभिन्न नामों से पुकारा गया। महाभारत काल में यह क्षेत्र 'चेदि प्रदेश' के नाम से उल्लेखित किया गया।[5] उस

---

1. राय चौधरी हेमचंद, पोलिटिकल हिस्ट्री आफ एसिएन्ट इंडिया, पृष्ठ–68, 93–95, 128–131
2. इंपीरियल गजेटियर ऑफ इंडिया, भाग 9, (1908) पृष्ठ–68
3. एटकिन्सन ई.टी. स्टेटिस्टिकल डिस्ट्रिक्टिएव एंड हिस्टोरिकल एकाउंटस ऑफ नार्थ वेस्टर्न प्रोविन्सेज आफ इंडिया भाग–1 (बुन्देलखण्ड) इलाहाबाद, 1874, पृष्ठ–20
4. ओरछा स्टेट गजेटियर (नवल किशोर प्रेस लखनऊ 1907 ई.)
5. मिश्रा, के.सी., चंदेल और उनका राजत्व काल (वाराणसी, संवत 2011) पृष्ठ–4, 5

समय चेदि देश का प्रसिद्ध व महान शासक शिशुपाल था, जिसकी राजधानी चंदेरी थी।[1] छठवीं शताब्दी ईसा पूर्व तक यह क्षेत्र इसी नाम से जाना जाता रहा। पुराणों में इस क्षेत्र को दशार्ण के नाम से भी जाना गया। बेतवा, धसान, चंबल, सिंधु, केन, टौंस (तमसा) यमुना, नर्मदा, पहूज एवं पैसुनी (मंदाकिनी) नदी से सिंचित इस भूभाग को दर्शाण प्रदेश के नाम से पुकारा गया।[2] इस क्षेत्र को जुझौति नाम से भी जाना गया। चन्देलों के शासनकाल में उनके अधिकृत क्षेत्र को जेजाक भुक्ति के नाम से जाना गया।[3] इस नाम का उल्लेख सातवीं शताब्दी में क्षेत्र के भ्रमण पर आये चीनी यात्री ह्वेनसांग ने किया है। यह नाम चंदेल नरेश जयशक्ति अथवा जेजा से जुड़ा हुआ माना गया।

ह्वेनसांग के चि–चि–टो राज्य को उज्जेन 167 मील दूर उत्तर पूर्व में स्थित बताया था। इसे जनरल कनिंधम ने जुझौति प्रदेश माना है।[4]

बुन्देलों का उदयः बुन्देला शासक काशी के गहरवार क्षत्रियों के वंशज थे। सबसे पहले बुन्देलों का राज्य महौनी, गढ़कुंडारऔर ओरछा से प्रारंभ हुआ जो धीरे–धीरे संपूर्ण क्षेत्र में फैल गया। संवत 731 से लेकर संवत 1105 तक इस वंश के बीस शासक हुये जिनमें

---

1. महाभारत वन पर्व 22.50, 14.3, महाभारत सभार्व 70.64, 39.52, 39.54, 68.15, 17 आदि, भीष्म पर्व 75.10, कर्ण पर्व 3.32

2. मार्कण्डेय पुराण 57,51,55

3. पांडेय, अयोध्या प्रसाद, चंदेल कालीन बुन्देलखण्ड का इतिहास, पृष्ठ–5 रोनाल्ड फ्रगमेन्डस पृष्ठ–106

4. कनिंधम एलेक्जेन्डर, ए एसिएन्ट जियोग्राफी आफ इंडिया, वाराणसी (1975) पृष्ठ–405

कृर्तराज, महिराज, सूर्धराज, उदयराज, गरूड़सेन, समरसेन, आनंद सेन, करनसेन, कुभारसेन, मोहनसेन, राजसेन, काशीराज, श्यामदेव, प्रहलाददेव, हम्मीरदेव, आसकरन, अभयकरन, सोहनपाल और करनाल ने बुन्देलखण्ड में शासन किया।[1] जिस समय बुन्देले राजाओं का अभ्युदय हो रहा था उसी समय चन्देलों का पतन हो रहा था। इसका लाभ उठाकर हेमकरण ने बुन्देला राज्य की स्थापना की और मिर्जापुर के पास गहरवार पुरा अथवा गोरे नामक राज्य की स्थापना की।

उसके बाद इस वंश में वीरभद्र, कर्णपाल, सोनकदेव, नानकदेव, अर्जुन और सोहनपाल आदि विभिन्न शासक हुये। सोहनपाल द्वारा गढ़कुंडार के किले पर कब्जा एक महत्वपूर्ण घटना थी। सोहनपाल के आठ वंशज गढ़कुंडार के आस–पास के भूभागों को अधिकृत कर वहां अपना शासन करते रहे परन्तु नवीं पीढ़ी के रूद्रप्रताप (1507–1531 ईसवी) के शासनकाल से बुन्देलों का उत्कर्ष शुरू हुआ।[2] उसके शासनकाल में ही 1530 में ओरछा राज्य की स्थापना हुयी। उसके बाद भारती चंद और फिर मधुकर शाह गद्दी पर बैठे।

मधुकरशाह के समय स्वतंत्र ओरछा राज्य बना। मुगल शासक अकबर के बुलाने पर जब वे उसके दरबार में नहीं गये तो अकबर ने अपनी सेना ओरछा पर चढ़ाई करने भेज दी। युद्ध में मधुकर शाह हार गये। उसके आठ पुत्रों में सबसे ज्येष्ठ पुत्र रामशाह के द्वारा बादशाह

---

1. तिवारी, गोरेलाल, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास (काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा संवत् 1990 में प्रकाशित) पृष्ठ–114 फुट नोट

2. केशव कृत केशव कथावली, खंड 2, पद 10–17, ओरछा गजेटियर (1907) पृष्ठ 6 एवं गुप्ता भगवानदास (1997) मुगलों के अंतर्गत बुन्देलखण्ड का सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक इतिहास पृष्ठ –8

से क्षमायाचना करने पर उसे ओरछा का शासक बना दिया गया। उसके राज्य का प्रबंध उसका अनुज इन्द्रजीत करता था। इन्द्रजीत के भाई वीरसिंह देव ने सदैव मुसलमान शासकों का विरोध किया। मुगल शासकों ने उसे कई बार दबाने की कोशिश की परन्तु वे असफल रहे। अबुल फजल को मारने में वीरसिंह देव ने शहजादा सलीम (जहांगीर) को पूरा सहयोग दिया इसलिये जहांगीर के शासक बनते ही वीरसिंह देव बुन्देलखण्ड का महत्वपूर्ण शासक बना।[1]

वीरसिंह देव के उपरान्त बुन्देला साम्राज्य का बंटवारा हो गया। उनके ज्येष्ठ पुत्र जुझार सिंह को गद्दी दी गयी और शेष 11 भाईयों को जागीरें दे दी गयी। इनमें पहाड़ सिंह को एरच, नाहरदास को धामौनी, तुलसीदास को भिड़, बेनीदास को जैतपुर एवं कोंच, किशुन सिंह को देलवारा, बाघराज को गर्रौली और माधव सिंह को खरगापुर क़ी जागीरें दी गयीं। परमानंद को कोई जागीर नहीं दी गयी और वे दीवान हरदौल के साथ ओरछा में ही रहे।[2] वीरसिंह के बाद बुन्देला शासकों में चंपतराय प्रसिद्ध हुये।

उसके बाद सुजान सिंह (1653–1672 ईस्वी), इन्द्रमणि (1672–1675 ईस्वी) यशवंत सिंह (1675–1684 ईस्वी), भगवंत सिंह (1684–1689 ईस्वी), उद्दैव सिंह (1689–1736 ईस्वी), पृथ्वी सिंह (1736–1752 ईस्वी) ओर सावंत सिंह (1752–1765 ईस्वी) के अलावा हटेसिंह, विक्रमजीत, धरमपाल, तेज सिंह, हमीरपुर और प्रताप सिंह ने भी शासन किया।

---

13. तिवारी, गोरेलाल (वही) पृष्ठ 130–140

14. भारतीय, बुन्देले और उनका राजत्वकाल (विन्ध्यभूमि) 1956 पृष्ठ–52

छत्रसाल एवं मराठे :

पन्ना नरेश छत्रसाल ने बुन्देलखण्ड की स्वतंत्र सत्ता स्थापित करने के लिये काफी संघर्ष किया। वह चंपतराज के पुत्र थे। मुगलों के आतंक से वे राजा जयसिंह की सेना में भर्ती हो गये। उन्होंने जयसिंह की ओर से पुरंदर, बीजापुर और देवगढ़ में युद्ध किया। इसके बाद वे शिवाजी की शरण में पहुंचे और उनके परामर्श से बुन्देलखण्ड में मुगल विरोधी संघर्ष की शुरूआत छत्रसाल ने की।[1]

छत्रसाल ने धामौनी, मैहर और बांसी पर अधिकार कर लिया। मुगल शासक औरंगजेब को छकाते हुये उन्होंने ग्वालियर और कालिंजर पर भी अधिकार कर लिया। 1707ई. में औरंगजेब के मरने के बाद बहादुरशाह गद्दी पर बैठा तो उसने छत्रसाल का साथ दिया। छत्रसाल की वृद्धावस्था में इलाहाबाद के सूबेदार मोहम्मद खां बंगरा ने अस्सी हजार की सेना और दलेल खां, पीर खां एवं अहमद खांद जैसे सेनानायकों के साथ बुन्देलखण्ड पर चढ़ाई कर दी। इस विकराल स्थिति से निपटने के लिये छत्रसाल ने बाजीराव पेशवा से मदद मांगी। बाजीराव को हिन्दू धर्म संरक्षक माना गया।[2]

उन्होंने एक पद बाजीराव पेशवा को दोहे के रूप में लिखा "जो गति भई गजेन्द्र की, सो गति पहुंची आज बाजी जात बुन्देल की, राखा बाजी लाज"।[3] इसमें उन्होंने मुहम्मद बंगस के विरूद्ध सहायता की मांग की। बाजीराव पेशवा ने एक लाख की विशाल सेना के साथ

---

1. छत्रप्रकाश, पृष्ठ 78–80 औरंगजेब भाग–5, पृष्ठ 393, छत्रसाल पृष्ठ 22–23
2. पन्निकर के.एम. : ए सर्वे आफ इंडिया हिस्ट्री संवर्त 1966 पृष्ठ–193
3. सरदेसाई.जी.आर. मराठों का नवीन इतिहास, द्वितीय खंड 1980 पृष्ठ 92–96

बंगस से युद्ध किया और छत्रसाल की मदद की। बाजीराव पेशवा की मदद से खुश होकर छत्रसाल ने अपना राज्य तीन हिस्सों में बांट दिया और बाजीराव पेशवा को अपना पुत्र मानते हुये एक हिस्सा दिया। उसने अपने दरबार की सुंदर नर्तकी मस्तानी बाई भी बाजीराव पेशवा को भेंट की।

पहले भाग में हृदयशाह को पन्ना, मऊ, गढ़ाकोटा, कालिंजर, शाहगढ़ और उसके आसपास के इलाके मिले। इनसे 38 लाख रूपया राजस्व वसूल होता था।

दूसरे भाग में उसके पुत्र जगतराज को जैतपुर, अजयगढ़, चरखारी, बिजावर, सरीला, भूरागढ़, और बांदा दिये इसकी आय 31 लाख रूपये मानी गयी।

बाजीराव पेशवा को मिले तीसरे हिस्से में उसे कालपी, एटा, हृदयनगर, जालौन, गुरसरांय, झांसी, गुना, गढ़ाकोटा और सागर के अलावा छोटी–छोटी जागीरें किली।[1] इन जागीरों से 31 लाख रूपया राजस्व प्राप्त होता था। पेशवा ने 1747 ईस्वी में बुन्देलखण्ड के राजाओं के साथ एक नयी सन्धि की जिससे उसके अधिकार क्षेत्र में इतनी वृद्धि हो गयी कि कर वसूली में लगभग 17 लाख रूपये की वृद्धि हो गयी। इसके अलावा पन्ना की हीरे की खानों में भी बराबर की हिस्सेदारी रखी गयी।[2]

पेशवा बाजीराव और महाराजा छत्रसाल के दोनों पुत्रों के बीच पारस्परिक सहयोग की संधि भी स्थापित हुयी। इसके अनुसार तय

---

1. हमीरपुर गजेटियर पृष्ठ–147
2. एटकिन्सन ई.टी. (वही) पृष्ठ–30

किया गया कि (1) दोनों भाई जगतराज और हृदयशाह चंबल एवं यमुना के उस पार के प्रांत को छोड़कर सभी स्थानों पर युद्ध के लिये बाजीराव के साथ जायेंगे और जो माल लूट में मिलेगा उसे बराबर बांटेगे। (2) यदि बाजीराव दक्षिण के किसी युद्ध में जायेंगे तो दोनों बुंदेला राजाओं को संपूर्ण बुन्देलखण्ड की दो माह तक रक्षा करनी होगी। (3) छत्रसाल ने बाजीराव को पुत्र के समान माना इसलिये बाजीराव हृदयशाह और जगतराज को भाई के समान मानेंगे।[1]

छत्रसाल की मृत्यु के बाद कुछ समय तो मराठों और बुन्देलाओं के बीच संबंध मधुर रहे परन्तु बाद में इनके बीच दरार आती गयी जो परस्पर संघर्ष में बदल गयी। छत्रसाल के पुत्र हृदयशाह की मृत्यु 1749 में हुयी। उसके 9 पुत्र थे। इनमें सबसे रूपसिंह को राज्य का उत्तराधिकारी बनाया गया। इससे असंतुष्ट पृथ्वीराज ने बाजीराव पेशवा से सहायता ली।[2] बाजीराव के हस्तक्षेप के बाद रूपसिंह ने पृथ्वीराज को शाहगढ़ और गढ़ाकोटा की जागीरें दी।

इसके उपरान्त पृथ्वीराज ने बाजीराव को चौथ देना प्रारंभ किया। रूप सिंह के बाद उसके पुत्रों मे भी सत्ता के लिये संघर्ष हुआ। बुन्देला राजाओं में चलने वाले गृहयुद्ध ने उन्हें कभी सफल नहीं होने दिया। वहीं जगतराज के वंश में भी गृह युद्ध हुआ। उनके बाद पहाड़सिंह, खुमान सिंह एवं गुमानसिंह अल्पकाल के लिये शासक बने। बाजीराव पेशवा के पश्चात नाना साहब (बालाजी बाजीराव पेशवा) को बुन्देलखण्ड से चौथ मिलना प्रारंभ हुयी। जगतराज ने

---

1. इंपीरियल गजेटियर आफ इंडिया, 1908 एवं तिवारी गोरेलाल (वही) पृष्ठ–232

2. तिवारी गोरेलाल (वही) पृष्ठ–232, 233

मराठों को महोबा, हमीरपुर और कालपी परगने दिये। बाजीराव पेशवा ने इस क्षेत्र की बागडोर अपने सूबेदार गोविन्द पंत खरे को दी जो सागर में रहते हुये इन क्षेत्रों का प्रबंध करने लगे। झांसी का प्रबंधन रघुनाथ हरी नेवालकर को सौपा गया।[1] इसी बीच हिम्मत बहादुर गोसाई ने अली बहादुर के साथ मिलकर बुन्देलखण्ड पर आक्रमण कर दिया तथा छोटे–छोटे राजाओं को अपने अधीन कर सनदें प्रदान की।

अली बहादुर पेशवा वंश का था और उसे बाजीराव एवं पन्ना दरबार की नर्तकी मस्तानी की संतान मना जाता है। इनकी संयुक्त सेना ने बुन्देलखण्ड के बांदा, अजयगढ़, चरखारी, बरौधा, मौदहा, छिबून, पन्ना, रीवा एवं जैतपुर आदि स्थानों पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया।

बुन्देलखण्ड में अंग्रेजों का आगमन

भारत में व्यापार करने के उद्देश्य से आये अंग्रेजों ने यहां की राजनीति में हस्तक्षेप करना शुरू कर दिया। बुन्देलखण्ड में मराठा–बुन्देला संघर्ष का फायदा उठाकर अंग्रेजों ने 10 वीं सदी की शुरूआत में ही इस क्षेत्र में अपने पैर पसारने शुरू किये। 1801 ईस्वी में सिंधियां तथा होल्कर के बीच युद्ध हुआ। इस युद्ध में सिन्धिया तथा पेशवा की संयुक्त सेनाओं की पूना में 25 अक्टूबर 1802 ईस्वी को पराजय हुयी। पराजय के बाद 31 दिसंबर 1802 ईस्वी में बेसिन की संधि पर हस्ताक्षर किये गये। इसके अनुसार पेशवा ने 26 लाख रूपये की जागीर के मूल्य पर एक ब्रिटिश सेना रखना स्वीकार किया। इसके बाद 16 दिसंबर 1803 ई. को हुयी नयी संधि के अनुसार सेना

---

1. इंपीरियल गजेटियर आफ इंडिया (सेन्ट्रल इंडिया) पृष्ठ 367

पर होने वाले खर्च को बढ़ाकर 36 लाख रूपये से अधिक कर दिया।[1] 1803 ई. में हुयी बेसिन की संधि के अनुसार बुन्देलखण्ड का वह क्षेत्र, जो मराठों के अधीन था, उस पर अंग्रेजों का आधिपत्य स्थापित हो गया।[2] इसके उपरान्त 1804 ईस्वी के अंत में बुन्देलखण्ड में अंग्रेजों की शासन प्रणाली के प्रभावशाली बनाने के लिये एक कमीशन की नियुक्ति की गयी जिसमें मि. ब्रुक को अध्यक्ष नियुक्त किया गया।

गर्वनर जनरल के एजेन्ट कैप्टन बैली एवं ब्रिटिश सेना के आफीसर कमान्डिंग को इस कमीशन का सदस्य नियुक्त किया गया। इसमें ब्रूडी को जज तथा जे.डी. इकास्किन को कलेक्टर के पद पर नियुक्त किया गया।[3] ब्रिटिश शासन की ओर से कैप्टन बैली ने 18 सितंबर 1803 को बांदा, 13 सितंबर 1803 को अगासी, 6 फरवरी 1804 ई. को पारसेटा एवं कोटी राज्य ब्रिटिश राज्य में मिला दिये। ये क्षेत्र केन नदी के पूर्वी तट पर स्थित थे।

केन नदी के पश्चिमी तट पर स्थित क्षेत्रों में कालपी को 8 दिसंबर 1803 में, कोट्टा तथा सैयद नगर को 16 सितंबर 1803 में कोंच 28 दिसंबर 1803 , राठ को 26 दिसंबर 1803 में जबाबपुर को 29 जनवरी 1804 में, खरका को 16 जनवरी 1804 में, पनवाड़ी को 7 फरवरी 1804 में तथा सूपा को 18 मार्च 1804 में ब्रिटिश राज्य में मिला लिया गया।[4]

---

1. एटकिन्सन ई.टी. स्टेटिस्किल, डिस्किटिएव एंड हिस्टोरिकल एकाउंट ऑफ द नार्थ वेस्टर्न प्रोविनसेज आफ इंडिया भाग–1 (बुन्देलखण्ड) इलाहाबाद 1874, पृष्ठ–35
2. एचीन्सन सी.यू. टीटीज, इंगेजमेन्ट एंड सनद पृष्ठ–187
3. एटकिस्न ई.टी. (वही) पृष्ठ–38
4. एटकिन्सन (वही) पृष्ठ–39

इसके उपरान्त आगे चलकर बुन्देलखण्ड में स्थानीय राज्यों तथा रियासतों को मिलाकर बुन्देलखण्ड एजेन्सी का गठन किया गया। क्षेत्र में शांति व्यवस्था स्थापित होने के बाद 1811 ईस्वी में बुन्देलखण्ड में गर्वनर जनरल के एजेन्ट की नियुक्ति की गयी और मुख्यालय बांदा बनाया गया। बाद में 1818 ईस्वी में मुख्यालय बांदा से हटाकर कालपी, 1824 ई. में हमीरपुर और पुनः 1832 ईस्वी में बांदा को गर्वनर जनरल के एजेन्ट का मुख्यालय बना दिया गया।

1835 ई में इस क्षेत्र का शासन उत्तर पश्चिमी प्रात के लेफिटनेन्ट गर्वनर को सौपा गया जिसका मुख्यालय आगरा बनाया गया। 1849 ई. में बुन्देलखण्ड का प्रशासन सागर संभाग के कमिश्नर को हस्तातरित कर दिया गया और झांसी में एक सहायक अधिकारी को नियुक्त कर दिया गया। बाद में इसका मुख्यालय नौगांव बना दिया गया।

1954 ई. में मध्य भारत एजेन्सी का गठन हुआ और इस क्षेत्र का प्रशासन मध्य भारत के गर्वनर जनरल के एजेन्ट को सौंप दिया गया। इसके उपरान्त 1862 से 1871 इस्वी तक बघेलखंड एवं बुन्देलखण्ड एजेन्सी का कार्य संयुक्त रूप से किया जाता रहा।

1 दिसंबर 1931 को बुन्देलखण्ड तथा बघेलखण्ड दोनों एजेन्सियों को मिला दिया गया तथा इस संयुक्त एजेन्सी के अधिकारी को बुन्देलखण्ड में पालटिकल एजेन्ट का नाम दिया गया तथा नौगांव को इसका मुख्यालय बना दिया गया।

इस बुन्देलखण्ड एजेन्सी में क्षेत्र की 33 रियासतें तथा जागीरें शामिल थी। इसमें अजयगढ़, अलीपुरा, बंका पहाड़ी, बाबनी, बरौंदा,बेरी, भैसुन्डा, बोहट, बिजावर, बिजना, चरखारी, छतरपुर, दतिया, ढुरवई,

गहरौली, गौरीहार, जासौ, जिगनी, कामत रजौता, कोठी, लुगासी, मैहर, नागौड़, नौगांव, रिबाई, ओरछा (टीकमगढ़) पहरा (चौबेपुर), पावदेव (नयागांव), पन्ना, समथर, सरीला सौहावल तराइन तथा टोड़ी फतेहपुर को शामिल किया गया।

अध्याय – द्वितीय

बुन्देलखंड की सामाजिक व आर्थिक स्थिति

अध्याय – द्वितीय

बुन्देलखंड की सामाजिक व आर्थिक स्थिति

समाज में जनसाधारण की स्थिति

मध्यकालीन बुन्देलखंड के अंतर्गत समाज बुन्देलो और मराठाओं के अधीन रहा अतः सामाजिक व्यवस्था में थोड़े–बहुत बदलाव आते रहे। इस भूभाग में सामंती प्रथा विद्यमान थी। हिन्दुओं के चार वर्ण ब्राहमण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सामाजिक व्यवस्था का अंग थे। जिसमें ब्राहमणों की अधिक मान्यता होते हुये भी इस क्षेत्र में बुन्देले क्षत्रियों के शासक होने के कारण इस वर्ग की प्रधानता थी। ब्राहमण वर्ग क्षत्रियों की सत्ता को दैवीय राजत्व के सिद्धान्त का प्रतिपादन कर बल प्रदान करते थे और बदले में राज्य से वृत्तियां, अनुदान और भूमि प्राप्त करते थे। यह वर्ग उस समय समाज के जीवन मूल्यों, नैतिक आचरणों और विभिन्न कर्तव्यों का निर्धारण कर धार्मिक कार्मकांडों से अपना जीवन यापन करता था। धार्मिक और वैवाहिक रीति–रिवाजो जैसे सामाजिक अनुष्ठानों ओर परम्परागत शिक्षा प्रणाली से जुड़े होने के कारण समाज पर उनका असाधारण प्रभाव होता था।

प्राचीन काल में जुझौति प्रदेश के नाम से विख्यात इस क्षेत्र में जिझौतिया ब्राहमणों का वर्चस्व था।[1] इसके अलावा इस क्षेत्र में सारस्वत, गौर, सनाड्य, कान्यकुब्ज, मैथिल, उत्कल, खेड़ावाल एवं सरयूपारि उपजातियां भी विद्यमान थी। सत्रहवीं शताब्दी के मध्य में

---

1. स्मिथ बी.ए.; अर्ली हिस्ट्री आफ इंडिया, तृतीय संस्करण पृष्ठ–376

इस क्षेत्र में ब्राहमणों की संख्या 1,36,000 मानी गयी जो सर्वाधिक थी। संख्या की दृष्टि से झाँसी एवं बांदा में ब्राहमणों का बाहुल्य था। जालौन में इनकी संख्या दूसरे स्थान पर थी। प्रारम्भ में ब्राहमणों का कार्य मंदिरों में पूजा–पाठ करना और शासकों का मंत्री होना था परन्तु बाद में जब इन्हें जागीरें और सनदें मिली तो ये कृषि एवं नौकरी आदि में भी प्रवृत्त हुये। यहां के ब्राह्मणों में प्रमुख रूप से मिश्र, दुबे, तिवारी और चौबे उपजातियां थी।[1] दक्षिण के मराठा ब्राहमण भी इस क्षेत्र में निवास करते थे। ब्राहमणों के बाद इस क्षेत्र में क्षत्रियों का बाहुल्य था। बुन्देलखण्ड के क्षत्रियों में अधिकांशतः परमार, बिसेन, बुन्देला, बनाफर, चन्देल, भदौरिया, कछवाहा, तोमर, चौहान व हैहयवंशी प्रमुख थे। इन्हीं के साथ दांगी, लोधी और कुर्मी भी अपने को ठाकुर कहते थे।[2] यहाँ के क्षत्रियों ने अपने बाहुबल और युद्ध कौशल से तमाम जागीरें प्राप्त कीं। जालौन में कछवाहा और सेंगर राजपूतों का वर्चस्व था, वही हमीरपुर में बैस, गौतम, परिहार और सूर्यवंशी राजपूत क्षत्रियों की संख्या ज्यादा थी। क्षत्रियों ने अपनी जाति का ध्रुवीकरण कर 3 वर्ग संगठित कर लिये थे जो 3,13 एवं 36 के घटक के नाम से विख्यात रहे। इसमें प्रमुख शक्तिशाली घटक 3 वाला था। जिनमें बुन्देला, पवार और घंघेरें सम्मिलित थे। यह त्रिगुट समाज और सत्ता, दोनों में प्रभावी था।

वैश्य वर्ग बुन्देली समाज की आर्थिक रीढ़ था। यह वर्ग खेती–बाडी करने वाली जातियों को हल–बैल एवं बीज के लिये धन देता था।

---

1. एटकिन्सन ई.टी.; (वही) पृष्ठ–56

2. रसेल, आर.बी.; दी ट्राइब्ज एंड कास्ट आफ द सेन्ट्रल प्राविन्सेज इंडिया भाग–4, पृष्ठ–55

इस क्षेत्र में गहोई, जैन, अग्रवाल, खत्री, माहौर, मारवाडी और वैश्य आदि वर्ग प्रमुख रुप से विद्यमान थे। इनमें गहोई और जैनों की बहुलता थी। समकालीन साहित्य में वैश्यों को प्रवृत्ति से वाणिक, स्वभाव से कंजूस और सूदखोर बताया गया।

शूद्रों के ऊपरी वर्ग में वे जातियां आती थी जिनका संसर्ग तीन उच्च वर्गो में वर्जित नहीं होता था। यह वर्ग अपने व्यवसाय या सेवा कार्य के कारण इन वर्गो के निकट रहता था। इसमें सोने का काम करने वाले 'सुनार', लोहे का काम करने वाले 'लुहार', लकड़ी का कार्य करने वाले 'बढ़ई', चमड़े का कार्य करने वाले 'चमार' आदि प्रमुख थे।[1] इसके अलावा माली, शिल्पी, पटवा, ढीमर, कुम्हार, कोरी, धोबी, काछी, कुर्मी, गूजर, अहीर और रावत भी इस वर्ग में शामिल थे। इस समय ठठेरे, पासी, धोबी, बसोर, बहेलिया, कसाई, डोम, चमार और चांडाल आदि 'अंत्यत' जातियों में समझे जाते थे।

मध्यकाल के अंतर्गत झाँसी में संख्या की दृष्टि से ब्राहमणों के बाद चमार जाति के लोग निवास करते थे। इसके अलावा काछी, कोरी, अहीर, गड़रिया, कुर्मी, बुन्देला, लोधी और रवंगारों की संख्या भी खासी थी। बांदा में कुर्मी, काछी, लोधी, अहीर कोरी, तेली और चमारों की संख्या अच्छी–खासी थी। हमीरपुर में लोधी, तेली, अहीर, कोरी, कहार, केवट, खंगार, कुम्हार और बसोर जाति के लोग भी खासी संख्या में निवास करते थे। जालौन में कुम्हार जाति का 107 गांव और गूजर जाति का 105 गांव पर वर्चस्व था। इसके अलावा कोरी, काछी और लोधी जाति के लोग भी इस क्षेत्र में

---

1. इंपीरियल गजेटियर आफ इंडिया, भाग–12, पृष्ठ–440

निवास करते थे।[1] समाज में मुस्लिम एवं ईसाई जाति के परिवार भी रहते थे परन्तु वे गांवो या बस्तियों के एक ओर पृथक रहा करते थे क्योंकि बहुसंख्यक हिन्दू समाज उन्हें धर्म विरोधी समझते हुए अस्पृश्य मानकर धृणा की दष्टि से देखा करता था। इस काल में महाराष्ट्रियन लोग भी बन्देलखंडी समाज से विलग व परदेशी बने रहें।[2]

इस काल में बुन्देलखंड में नारी की दशा सोचनीय थी। स्त्रियां सभी तरह से अपने स्वामी के अधीन रहती थी। इस समाज में बाल विवाह, बहु विवाह एवं अनमेल विवाह प्रचलित थे। विधवा को समाज में उपेक्षित जीवन व्यतीत करना पड़ता था। समाज के मध्यम एवं निम्न वर्गों में पुरूष या स्त्री परित्याग की व्यवस्था का भी चलन था। समाज के तीनों उच्च वर्गों में घूंघट निकालने की प्रथा थी। इस क्षेत्र में नारियों के बीच सती प्रथा का भी प्रचलन रहा।

आर्थिक स्थिति

मध्य काल से ही बुन्देलखंड आर्थिक रूप से पिछड़ा और शोषित रहा। इस क्षेत्र में मध्यम एवं निम्न वर्ग के लोग भूमि के स्वामित्व से वंचित थे और वे जागीरदारों या बडे–बडें भूमि स्वामियों की भूमि पर कार्य करते थे। यहॉ के लोग का मूल व्यवयसाय कृषि रहा परन्तु भूमि की संरचना एवं मिट्टी जटिल होने को कारण अधिक श्रम करने पर भी यहां के लोग लाभ नहीं उठा पायें। पहाड़ी एवं

---

1. एटकिन्सन ई.टी.; (वही) पृष्ठ–56

2. ताराचंद, भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास, भाग–1 पृष्ठ–103

पठारी भूमि होने के कारण इस क्षेत्र में सिंचाई की कमी रही और कुओं का निर्माण संभव न हो सका। इस काल में सामंती व्यवस्था विद्यमान थी। खेती–बाडी करनेवाले लोगों (रैयत) से वसूल की गयी मालगुजारी ही राज्य की आय का प्रमुख साधन था। कृषि योग्य भूमि की पैमाइश बीघा, बिस्वा अथवा बिस्वांसी में होती थी।

बुन्देलखंड में कुछ वर्षो के अंतराल में पड़ने वाले अकालों के कारण क्षेत्र आर्थिक समृद्धि प्राप्त नहीं कर पाया। यहॉ पड़ने वाले प्रमुख अकालों में 1783 ईस्वी एवं 1793 ईस्वी में पड़ा अकाल भयानक था। अकाल के कारण अनाज के अभाव में यहाँ के लोग मजबूरीवश भूसा, पत्ती, बेर, मकोरा, महुआ, तेन्दू अथवा अचार खाकर अपने जीवन की रक्षा करते थे।[1] इसके अलावा इस क्षेत्र में 1809ई., 1813ई., 1818ई., 1819ई., 1829ई., 1833ई., 1837ई., 1846ई. , 1868 ई., 1877ई., 1892ई., 1895ई., 1900ई. तथा 1905 ई. में पडे अकाल ने भी इस रूप की आर्थिक स्थिति पर चोट की। आर्थिक स्थिति ठीक न होने के कारण यहॉ के गरीब किसान और जरूरत मंद लोग बनियों और महाजनों से कर्ज लिया करते थे। इसके लिये उन्हें 50 पैसे से लेकर दो रूपये प्रति सैकड़े तक माहवारी ब्याज देना पड़ता था। कर्ज के लिये महाजन कृषक की भूमि या मवेशी जमानत के तौर पर रख लेता था। बीज भी कर्ज के रूप में उधार दिया जाता था।[2] इस कर्ज को फसल आने पर वसूल किया जाता था।

---

1. स्लीमैन, डब्ल्यू, एच; रेम्बवैस एंड कलेक्शन (यात्रा वृतांत) वाल्यूम 1 पृष्ठ–182
2. दीवान, प्रतिपाल सिंह; (वही) पृष्ठ–123

कृषि की दशा व उत्पादकता

बुन्देलखण्ड में सिंचाई के अभाव में कृषि की दशा अच्छी नहीं थी। यहाँ की खेती प्रायः वर्षा ऋतु पर निर्भर रहती थी। बुन्देलखंड में मुख्य रूप से दो फसले खरीफ यानी 'स्यारी' और रबी अर्थात 'उन्हारी' का प्रचलन था। इस क्षेत्र की मिट्टी में उर्वरता का अभाव था इसलिये कृषकों को अपनी भूमि कुछ वर्षो के अंतराल में परती छोड़नी पड़ती थी। खरीफ अर्थात 'स्यारी' के अंतर्गत ज्वार, मूँग, उर्द और कोदो की फसल बोयी जाती थी। रबी अर्थात 'उन्हारी' के अंतर्गत गेहूँ व चना क़ी बुबाई प्रमुख रूप से की जाती थी। उत्तरी बुन्देलखंड में यमुना से लगा कौंच–कनार और कालपी क्षेत्र अपनी उपजाऊ भूमि के लिये प्रसिद्व था। कालपी में बढ़िया गुड़ और बूरा तैयार किया जाता था।[1] इसके साथ–साथ हमीरपुर एवं बांदा में ज्वार, बाजरा, मक्का, गन्ना, कपास, गेहूँ, धनिया, जीरा, अजवाइन, हल्दी एवं अफीम की खेती भी प्रचलित थी। पन्ना एवं दतिया में अफीम के साथ–साथ भांग व गांजा का भी उत्पादन किया जाता था।

इस क्षेत्र में 'कोदो' गरीबों का अनाज माना जाता था। यह पडुवा एवं राकड़ भूमि पर होता था। इसे स्थानीय बोली में 'कुदई' के नाम से जानते थे। इस क्षेत्र की 90 प्रतिशत से अधिक जनता 'कोदो' के आटे की बनी रोटियां रवाकर ही अपना जीवन–यापन करती थी[2]। इसके अलावा रोली, कुटकी, बाजरा, समा, कोकुन, धान,

---

3. अबुल फजल; आईने अकबरी; भाग–2 (अं. अनु. जैरेट) 1978 पृष्ठ–192, 195

2. दीवान प्रतिपाल सिंह (वही) पृष्ठ–78

बट्टा, मकई, मूँग, मोठ, उर्द, बाजरा, धनिया, बटरा एवं गेहूँ का भी इस क्षेत्र में उत्पादन होता था। यहाँ तेल देने वाले बीज से सरसों, अलसी व अरंडी का भी उत्पादन होता था। कही–कहीं गन्ना की भी खेती की जाती थी।

यहाँ महोबा और ललितपुर के पाली और बिलौआ में पान की खेती का प्रचलन था। महोबा के पानों का बुन्देलखंड के बाहर बड़ी मात्रा में निर्यात किया जाता था।[1] यहाँ से गन्ना के रस से तैयार किये गये गुड़ और बूरे के साथ–साथ कपास, सूत से बने कपड़े और नील आदि को बुन्देलखंड से बाहर भेजा जाता था। इस क्षेत्र में कपास के साथ में नील, आल और कुसुम से रंगों का उत्पादन की काफी मात्रा में होता था। यहाँ की कच्ची कपास (बिनौले) को बाजार की सर्वोत्तम कपास के रूप में माना जाता था।

कपास और रंगों के उत्पादन के लिये सैकड़ो हिन्दू – मुस्लिम जुलाहों के अलावा रंगरेज, दर्जी और उनके परिवार के लोग लगे रहते थे। खैरुआ कपड़े की रंगाई के लिये खैर (कत्था) का प्रयोग किया जाता था और आल के पेड़ की जड़ो से लाल रंग तैयार किया जाता था। नील और कुसुम से कपड़ो के रंग बनते थे।[2] जालौन का सैय्यद नगर एवं कोटरा 'चुनरी' एवं 'रंगाई' के लिये प्रसिद्ध था। इसी प्रकार मऊरानीपुर कपड़ो के लिए प्रसिद्ध था। यहाँ के 'गजी' एवं 'खैरुआ' कपड़े के थान और धोतियों के अलाबा चंदेरी मलमल की

---

1. सिन्हा, एस.एन; सूबा आफ इलाहाबाद अंडर द ग्रेट मुगल्स; दिल्ली 1974 एपेंडिक्स ई–21 तथा बुन्देलखंड गजेटियर : पृष्ठ–247, 316 एवं हमीरपुर गजेटियर पृष्ठ–88, 196

2. ड्रेक ब्रोकमैन; बांदा गजेटियर (1909, इलाहाबाद) पृष्ठ–49

जरीदार साड़ियों के लिये सम्पूर्ण उत्तर भारत में प्रसिद्व था।[1]

इसके अलावा वनों से जलाऊ एवं इमारती लकड़ी प्राप्त होती थी। बुन्देंलखंड के ओरछा, चंदेरी, दतिया और पन्ना राज्यों की अधिक से अधिक भूमि बनों से आच्छादित थी। इन वनों से यहां के निवासियों को बांस, शहद, मोम, महुआ, बेर, आम, जामुन और सीताफल जैस उपज प्राप्त होती थी। इन वनों में पशुओं और जंगली जानवरों की अधिकता से जानवरों को मारने, खाल उतारने और उन्हें सुखाकर तैयार करने में कसाइयों, बहेलियों, शिकारियों और चमड़े का काम करने वाले चमारों की जीविका चलती थी।[1] केवट और धीवर जाति के लोग सिंघाडे, कमलगट्टा और कसेरू का व्यापार करते थे। सिंघाडे बुन्देलखण्ड के बाहर भी भेजे जाते थे।

इस क्षेत्र की भूमि में उगने वाली 'कांस' बुन्देलखंड के आर्थिक पिछड़ापन के लिये जिम्मेदार रही। यह एक लंबी जड़ों वाली घास होती थी तथा एक बार खेत में उग आने पर इसे खत्म करना लगभग असंभव होता था। सामान्यतः कांस 12 से 15 वर्षो तक लगातार खेत में बनी रहने के बाद ही समाप्त होती थी।[2] इससे बुन्देलखंड के कई गांव बुरी तरह से प्रभावित हुये। अच्छी तरह से हल न चलाई भूमि मे कांस बड़ी तेजी से ऊगती थी। इस क्षेत्र के बांदा, जालौन, झॉसी और हमीरपुर में कांस उगने से हजारो एकड़ भूमि की उत्पादकता बुरी तरह से प्रभावित हुयी।

---

1. रूसैल, आर.बी; सागर गजेटियर (इलाहाबाद 1906) पृष्ठ–148
2. ड्रेक ब्रोकमैन, डी. एल; बांदा गजेटियर (वही) पृष्ठ–20

इस क्षेत्र के कृषक शोषण और आर्थिक विपन्नता का शिकार थे। राज्यों में जागीरदार, मैमारदार, मराठों के मालगुजार एवं जमींदार ही भूमि स्वामी होते थे। ग्रामों में मंदिरों तथा मठों को जागीर लगी रहती थी जो ''पादारखी'' कहलाती थी। यहॉ की अधिकांश भूमि 'अनुपजाऊ' एवं 'रांकड' थी परन्तु इस पर कृषको को भारी कर अदा करना होता था।

मराठी ठिकानों झॉसी, सागर सहित अन्य स्थानों पर ''देखा–परखी'' और ''कूत या ''कनकूत'' प्रणाली से लगान वसूल किया जाता था। कृषि योग्य भूमि की पैदाइश निश्चित लंम्बाई की रस्सी से होती थी। कृषकों से 'मालगुजारी' या भूमिकर प्राप्त करने के लिए परगने तहसीलों में और तहसील हवेली (मुख्यालय) में विभाजित रहती थी तहसील का विभाजन ठप्पों (गांवों) में किया जाता था।

इस क्षेत्र में निकलने वाले माल पर चुंगी के अलावा नदियों की उतराई पर ''तट कर'' लगाया जाता था। इसके अलावा पान, भांग, गांजा, महुआ और शराब पर भी निश्चित कर लगाया जाता था।

उधोग–धंधे तथा व्यापार

प्राचीनकाल से ही बुन्देलखंड में कृषि आधारित उद्योगों के अलावा अन्य कुटीर उद्योगों का प्रचलन था। गांवों में रहने वाले किसान और खेतिहर मजदूर चटाई बुनना, सूत कातना, मूँज भांजना, रस्सी बटना और खपड़े बनाने का काम किया करते थे। अधिकांश गांवों में कपड़ा गजी बनता था। इसे बुनने वाले जुलाहे कोरी जाति के होते थे। इस काल में खरूआ बस्त्र उधोग बुन्देलखंड का महत्वपूर्ण कुटीर अधोग था। यहॉ अल नामक पौधे से लाल–भूरे रंग का निर्माण किया जाता था। जिसे खरूआ वस्त्र की रंगाई के लिये उपयोंग में लाया जाता था।[1] इसकी खेती जालौन तथा झॉसी में प्रमुख रूप से की जाती थीं।

जालौन के कोंच, कालपी, सैययद नगर कोटरा में कपड़ा रंगाई उद्योग मुख्य था। खरुआ बस्त्र का उत्पादन मऊरानीपुर में किया जाता था। मरुरानीपुर पहले एक छोटा सा गांव था जहां लोगों का पेशा खेती था। झॉसी के सूबेदार रघुनाथ राव के समय छतरपुर के व्यापारी, जो वहॉ के राजा की बड़ती हुयी मांगों को पूरा कर सकने में असमर्थ थे वहॉ से भागकर मऊरानीपुर आ गये, जिन्हें रधुनाथ राव द्वारा संरक्षण प्रदान किया गया। इसके फलस्वरूप इन व्यापारियों ने इस क्षेत्र में अपने औधोगिक प्रतिष्ठान खोलने प्रारंभ कर दिये।[2] मऊरानीपुर के इस कपड़ा उधाग ने देश के अन्य भागों में भी ख्याति

---

1. अबुल फजलः आईने अकबरी, भाग–2, पृष्ठ–170 तथा बुन्देलखंड गजेटियर, पृष्ठ–97

2. पाठक एस.पी; झॉंसी ड्यूरिंग द ब्रिटिश रुल (नई दिल्ली 1987) पृष्ठ–60

अर्जित की। यहां के व्यापारी अमरावती, मिर्जापुर, नागपुर, इन्दौर, फरूखाबाद, हाथरस, कालपी, कानपुर तथा दिल्ली में कपड़ों का निर्यात करते थे।[1] खरूआ वस्त्र उद्योग के अतिरिक्त यह क्षेत्र हाथ से बनाये गये कपडे तथा उस पर कलात्मक छपाई के लिये प्रसिद्व था। यहॉ गर्म कालीन भी बनाये जाते थे।[2] बांदा के विभिन्न हिस्सों में खाना पकाने के बर्तन तथा सोने व चांदी के गहनों का निर्माण कार्य होता था। छतरपुर, खरगापुर, दमोह और श्रीनगर में तांबा, पीतल ओर कांसे के बर्तन, मूर्तियां तथा खिलौने बनाये जाते थे। अनेक स्थानों पर मोटे कम्बल तथा टाट बुनने का कार्य किया जाता था। बांदा के कुछ गांवों कल्यानपुर, रावली तथा गौंड में विभिन्न प्रकार के पत्थरों को काटकर उन्हें पालिश करने के साथ–साथ अलंकृत किया जाता था।

इस क्षेत्र में सोने–चांदी तथा कांसे के आभूषणों का प्रचलन था। मौदहा में सुनारों द्वारा बनायी गयी चांदी की सुंदर और लचीली मछलियों का निर्यात बाहर किया जाता था।[3] कर्वी, चंदेरी, चरखारी तथा दतिया में रेशम और जरी का काम होता था। रीवा में गौरा पत्थर के बर्तन बनाये जाते थे। इसके अलावा एरच एवं सैय्यद नगर की चुनरी, दतिया एवं टीकमगढ़ की अमौआ और मऊ का खरूआ कपड़ों को नेपाल तथा लाहौर तक निर्यात किया जाता था।

---

1. एटकिंसन ई.टी; (वही) पृष्ठ–544
2. जोशी ई.बी; यू.पी. डिस्ट्रिक्ट गजेटियर झॉसी (1965) पृष्ठ–144
3. ड्रेक ब्रोकमैन (वही) बांदा गजेटियर पृष्ठ–75

बुन्देलखंड में ललितपुर, बिजावर एवं पैलानी लोहे के काम के लिये प्रसिद्व था। पन्ना में बंदूकें, तलवार और हथियार बनाने के साथ–साथ तोपें ढालने वाले कारीगर रहते थे। तालबेहट और सागर के सरौते और मालदौन की ताबें की तुरही व रमतूला प्रसिद्व था। छतरपुर, दमोह तथा जबलपुर मिटट्ी के बर्तनों के लिये प्रसिद्ध था। कालपी छतरपुर, सागर एवं दमोह में देशी कागज बनता था। बांदा, केन नदी से निकलने वाले रंग–बिरंगे पत्थरों की जड़ाई के लिये प्रसिद्व था।[1] इस क्षेत्र में कोंच एवं कालपी प्रमुख व्यापारिक केन्द्र थे।

समथर, दतिया और ग्वालियर में नमक, शक्कर, गुड़ एवं घी का व्यापार था। बुन्देलखंड से रूई और आलू नावों द्वारा मिर्जापुर एवं पटना तक निर्यात किया जाता था। घी और चना की बिक्री दोआब तक होती थी। बुन्देलखंड में कई स्थानों पर लौह अयस्क प्राप्त होता था। दतिया में नमक और 'शोरे ' की खाने थी। शोरे का उपयोग बारूद बनाने में किया जाता था।

पन्ना एवं कालिंजर में हीरे की खाने थी। इन हीरों की खुदाई पुराने तरीके से की जाती थी। पन्ना के राजा किशोर सिंह (1798–1834ई.) के शासनकाल में हीरों की इन खानों से पन्ना राज्य को सात लाख रूपये वार्षिक आय होती थी।[2] पन्ना और उसके आस–पास के काफी लोग इन हीरों का व्यापार करते थे।

---

1. गुप्ता, भगवान दास; मुगलो के अन्तर्गत बुन्देलखंड का सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक इतिहास पृष्ठ–102

2. पांग्सन, डब्लू.आर; ए हिस्ट्री ऑफ बुन्देलाज (कलकत्ता 1828) पृष्ठ–169, 170

बुन्देलखंड में ग्रेनाइट ओर विभिन्न तरह के इमारती फर्श तथा छाने के पत्थर, चूने के कंकड और मोरम की खदानें सभी जगह पायी जाती थी। पालर, पनवाड़ी और गौरारी कस्बें में गौरा पत्थर की खदानें थी।

उत्तर भारत में कालपी सबसे बड़ा व्यापारिक केन्द्र था। बुन्देलखंड मेंकोंच, मऊरानीपुर और छतरपुर भी बड़े व्यापारिक केन्द्र था। इसके अलावा झॉसी मेंएरच, चिरगांव, मोठ एवं गुरसराय बांदा में अतर्रा, बसोदा, कर्बी और मानिकपुर, दमाह में निबोरा, नौघटा, हटा हिडीदिया, गैसाबाद एवं मगरौन, सागर में शाहपुर, राहतगढ़, खुरई मालदौन, देवरी, गढकोटा, चांदपुर, महाराजपुरएवं बंडा,पन्ना में रैपुरा, मलहरा, पवई, महाराजगंज, शाहनगर और जनवरी प्रतुख बाजार थे।

इस क्षेत्र में गुसांई और पुरी साधु–संयासी बंजारों की तरह चलता–फिरता व्यबसाय करते थे। समकालीन विदेशी यात्री टिफिन थैलर अपने यात्रा विवरण में छतरपुर नगर के बाहर बसे ऐसे संयासी और बैरागी व्यापारियों का उल्लेख़ करता है।[1] बुन्देलखंड में अंतर जनपदीय और दूर–दराज क्षेत्रों में बड़ी मात्रा में धातु मुद्रा ले आने और ले जाने की असुविधा एवं मार्ग के खतरों, लूट एवं डाकेजनी आदि से बचने के लिये व्यापारियों द्वारा 'हुडियों' का प्रयोग किया जाता था। इसमें 'दर्शनी हुंडी' का भुगतान तुरंत करना होता था और 'मियादी हुंडी' में निश्चित मियाद पूरी होते ही उसका भुगतान करना होता था। इन दोनो स्थितियों में दलाली या कमीशन लिया

---

1. टिफिन थेलर जोसेफ; दि मिड गंगाटिक रीजन इन द एटीन्थ सेन्चुरी (संपादक, एस.एन. सिन्हा) पृष्ठ–64

जाता था जो आपसी सहमति अथवा पूर्व स्थापित परंपरा के अनुसार तय होना था।

इस प्रकार 1740ई. से 1805ई. के बीच बुन्देलखंड की उपर्युक्त सामाजिक–आर्थिक विवेचना से स्पष्ट होता है कि तत्कालीन परिस्थितियों में रियासतों में राजाओं–महाराजाओं का निरंकुश शासन था। ये राजा महाराजा अपने दरबारियों और सलाहकारों से घिरे रहते थे। उनकी आय का मुख्य स्रोत 'रैयत' से वसूला किये जाने वाला राजस्व कर था अतः राजाओं–महाराजाओं के ऐश्वर्य प्रिय जीवन के निर्वाह के लिये 'रैयत' पर करों का कठोर दबाब था। निःसंदेह बुन्देलखंड की कम ऊपजाऊ जमीन पर किसानों को निर्भर रहना पड़ता था। सिचाई सुविधाओं के अभाव के कारण भी उसे कृषि से अपेक्षाकृत लाभ नहीं हो पाता था। आये–दिन पड़ने वाले अकाल तथा अन्य प्राकृतिक आपदाओं ने किसानों की स्थिति को और भी दूभर बना दिया था अतः जनमानस की सामान्य दशा अच्छी नहीं थी।

इसके साथ ही बुन्देलखंड के सामंत और जागीरदारों के किसानों से संबंध भी सौहार्दपूर्ण नहीं थे क्योंकि लगान वसूल करते समय रियासतों के राजस्व अधिकारी कठोर तरीके अपनाते थे। इन रियासतों में कहीं भी जनता की शिक्षा का उचित प्रबंध नहीं था। जन कल्याण की भावना की राजाओं–महाराजाओं से अपेक्षा नहीं की जाती थी। इसके बाबजूद भी लोग उन राजाओं महाराजाओं को दैवीय स्वरूप मानते हुये उनके प्रति भक्ति भाव रखते थे। प्रजा की

यह सामान्य धारण थी कि ईश्वर ने उन्हें इसी प्रकार का गरीबी पूर्ण जीवन व्यतीत करने के लिये बनाया है।

बुन्देलखंड में उपरोक्त अवधि में मराठाओं, बुन्देलाओं तथा गोसांइयों के बीच आये–दिन संघर्ष होते रहते थे। इस कारण रियासतों का अधिकांश धन युद्धों में खर्च हो जाया करता था। शांति एवं सुरक्षा के लिये अधिकांश संख्या में सैनिको को रखना पडता था। उनके वेतन तथा अस्त्र–शस्त्र पर भी काफी खर्च पड़ता था जिसके लिये गरीब जनता को अपनी गाढ़ी कमाई करों के रूप में देनी पड़ती थी। रांकड़ बाहुल्य क्षेत्र होने के कारण बुन्देलखंड में उत्पादन का अनुपात दोआब के जिलों की तुलना में अपेक्षाकृत कम था। इस क्षेत्र के उद्योग–धंधे भी अविकसित अवस्था में थे। इन परिस्थितियों में राजशाही के जमाने में बुन्देलखंड के लोगो की सामाजिक व आर्थिक दशा अत्यंत ही निराशाजनक थी।

अध्याय–तृतीय

गोसांई बंश की उत्पत्ति एवं उसका राजनैतिक उदय

अध्याय–तृतीय

गोसांई बंश की उत्पत्ति एवं उसका राजनैतिक उदय

अठारहवीं शताब्दी के अंग्रेजी शासनकाल में विदेशी शासकों की शोषण की नीति, कठोर राजस्व प्रणाली, देशी उधोग–धंधों को नष्ट करने की नीति तथा अकाल एवं अन्य प्राकृतिक आपदाओं के कारण भारतीय जनमानस तंगी और बेरोजगारी से परेशान था। उस समय व्याप्त गरीबी के कारण धार्मिक कार्यो में लगे साधु–सन्यासियों को भी भूख के लिये संघर्ष करना पड़ा। आर्थिक दबाव के कारण इन साधु–सन्यासियों ने एकत्रित होकर युद्धप्रिय संगठन का निर्माण किया और जीविकोपार्जन के लिये सेना में भर्ती होकर मृत्युपर्यन्त युद्ध में भाग लेने का दृढ निश्चय किया। यह लोग विपरीत परिस्थितियों में भी अपनी जान की बाजी लगाकर सैनिक कार्यो में लगे रहे।[1]

इसीतरह के युद्ध प्रिय धार्मिक लोगों का संगठन 'गुसांइयों' द्वारा निर्मित किया गया। इस क्षेत्र के भ्रमण पर 1783 ई. में आये विदेशी यात्री विलियम हॉज ने गुसाइयों को हिन्दुओं के एक धार्मिक संगठन के रूप में पहचाना था। हॉज ने फिरोजाबाद की सीमा पर स्थित एक गॉव में लगभग 2,000 गुसांइयों को शिविर लगाये हुये देखा था। इन गुसांई सैनिको द्वारा यह शिविर फिरोजाबाद के

---

1. ओटिएन्ट, मिसलेनी एवं विलियम इर्विन; द आर्मी ऑफ द इंडियन मुगल (लंदन–1892), वाल्यूम–4, पृष्ठ–49, 50

आस–पास के गावों के लोगों की जान–माल की रक्षा के लिये लगाया गया था। यह गुसांई सैनिक पूर्णरूपेण अस्त्रों–शस्त्रों से सुससज्जित थे। उनके पास तोपखाना भी था जिसका प्रयोग, वे रक्षार्थ युद्धों में करते थे।[1]

इसी तरह 'अलीगोल' मुस्लिम वर्ग के पैदल सैनिकों की टुकडी होती थी। यह अपनी इच्छानुसार स्वयं को शस्त्रों से सुसज्जित करते थे। अलीगोल, नाम वास्तव में इन लोगों की युद्ध कला व समर नीति के कारण पड़ा। इस समर नीति (युद्ध नीति) द्वारा मुस्लिम वर्ग के यह धार्मिक सैनिक 'गोल' घेरा बनाकर मनोवैज्ञानिक रूप से अपनी शारीरिक क्षमता को बढ़ाने के लिए अली की प्रार्थना करते थे।

अली, पैगम्बर मोहम्मद के दामाद थे और इन्हें भारतीय मुस्लिम द्वारा अद्वितीय शक्ति का प्रतीक माना जाता था।[2]

इनमें गोसाई सैनिकों को शैव संम्प्रदाय के धार्मिक वर्ग से सम्बन्धित माना गया और इनकी उत्पत्ति जगत गुरू आदि शंकराचार्य के अनुयायियों से बताई गयी।[3] कहा जाता है कि जगत गुरू आदि शंकराचार्य के चार प्रधान शिष्य पदमपाद, हस्तामलक, मण्डन और तोटक थे। इसमें पद्मपाद के दो शिष्य तीर्थ और आश्रम एवं हस्ताम्लक के भी दो शिष्य वन और आरण्यक थे।

---

1. विलियम हाजिज; ट्रेवल्स इन इंडिया ड्यूरिंग द ईयर 1780–1783 (लंदन–1974) (द्वितीय संस्करण), पृष्ठ–110, 111

2. इंडो–फेंच रिलेशन; हिस्ट्री एंड परिस्पेक्टिव सेमिनार प्रोसीडिंग (नई दिल्ली 17–19, अप्रैल 1999) पृष्ठ–60

3. भट्टाचार्य, एफ.एस; ए डिक्शनरी ऑफ इंडियन हिस्ट्री (हिंदी सोसायटी लखनऊ)

इसी प्रकार मण्डन के तीन शिष्य गिरि, पर्वत एवं सागर व तोटक के तीन शिष्य सरस्वती, भारती तथा पुरी थे। आदि शंकराचार्य के इन्ही दस शिष्यों के नाम से सन्यासियों के दस वर्ग स्थापित हुये। सम्मिलित रूप से ये सभी गोसांई कहलाते थे।[1] ये सन्यासी आध्यात्मिक शक्ति के अतिरिक्त धर्म रक्षार्थ शस्त्र भी धारण करते थे।

शस्त्रधारी होने के कारण इनमें राजनैतिक महत्वकॉक्षायें जागृत हुयीं। इसके फलस्वरूप सत्रहवीं शताब्दी में यह एक सैनिक शक्ति के रूप में संगठित हो गये। इस सन्दर्भ में मण्डन के शिष्य 'गिरि' सम्प्रदाय का नाम प्रमुख आता है। इस सम्प्रदाय में राजेन्द्र गिरि एवं उनके शिष्य अनूप गिरि, (हिम्मत बहादुर) एवं उमराव गिरि का नाम प्रमुख रूप से लिया जा सकता है।

बुन्देलखंड के मध्यकालीन इतिहास में गोसांईयों का विवरण सर्वप्रथम दतिया के राजा दलपत राव के समय में मिलता है। दलपतराव मुगल सम्राट औरंगजेब (1657–1707) के समय दक्षिण में अदोनी के फौजदार थे। जब 20 जुलाई 1688 ई. में वह दतिया आये हुये थे उस समय उन्होंने प्रसिद्ध गोसांई सनत महादेव गिरि को भाण्डेर परगने का डगरई नामक गांव मन्दिर के लिये जागीर में लगा दिया गया था।[2]

एक अन्य विवरण में दतिया में उस समय 'गिरि' वर्ग के साधुओं के कई स्थान थे। उनमें शिवगिरि का मन्दिर सबसे अधिक प्रसिद्ध था। इसका निर्माण राजा शत्रुजीत (1762–1801 ई0) ने करवाया

---

1. मुंशी श्यामलाल, तवारीखे बुन्देलखंड, भाग–2 (नौगांव–1884) पृष्ठ–154
2. ढेंकुला, रामस्वरूप; बुन्देलखंड़ का राजनैतिक एवं सॉस्कृतिक अनुशीलन, (कानपुर–1987) पृष्ठ–97

था। आगे विवरण में लिखा है कि इन गोसांई सन्तों की परम्परा अति प्राचीन है और शिवगिरि महन्त से पहले भी इनकी 6 पीढियॉ गुजर चुकीं थी। इनमें से एक बाबा महादेव गिरि थे।[1]

दतिया गोसांईयों की उत्पत्ति का मुख्य केन्द्र था। राजेन्द्र गिरि दतिया के ही निवासी थे।[2] राजेन्द्र गिरि दतिया के ध्यानगिरि के शिष्य थे जो बाद में झॉसी आकर बस गये थे।[3] हिम्मत बहादुर गोसॉई के समकालीन एवं दरबारी कवि पदमाकर जिन्होंने 'हिम्मत बहादुर बिरदावली' की रचना की थी, उन्होनें भी राजेन्द्र गिरि को दतिया का बताया है।

एक कथानक के अनुसार एक बार राजेन्द्र गिरि कुलपहाड़[4] गये हुये थे। बहां पर एक विधवा ब्राह्मण महिला (सनाड्य) ने अपने दो बालकों को राजेन्द्र गिरि को सौप दिया था। राजेन्द्र गिरि उनको झॉसी ले आया था। यहॉ लाकर उसने इन दोनों बालकों को शिक्षा, दीक्षा एवं सैन्यं शिखा भी दी। आगे चलकर यह दोनों बालक महान् सैनिक बने। इनके नाम अनूप गिरि एवं उमराव गिरि रखे गये। इनमें से अनूप गिरि आगे चलकर महान् योद्वा बना। उसनें नवाब शुजाउद्दौला, मराठों एवं बांदा के नवाब के साथ मह्ान सफलतायें प्राप्त की। शुजाउद्दौला ने उसे हिम्मत बहादुर की पदवी भी दी थी।

---

1. ढेंकुला रामस्वरूप (वही), पृष्ठ–112
2. गुप्ता, भगवान दास; मस्तानी बाजीराव और उसके वंशज नवाब बॉदां (ग्वालियर–1983) पृष्ठ–49
3. मुंशी श्याम लाल; (वही) पृष्ठ–154
4. कुलपहाड़ ''झॉसी–मानिकपुर रेल्वे मार्ग, महोबा से पहले।

गोसांई वश का राजनौतिक उदय

सन् 1729 ई0 में बाजी राव प्रथम ने बुन्देला राजा छत्रसाल को ससैन्य सहायता से, मुगल सूबेदार मोहम्मद खॉ बंगश (जो कि 6 माह से जैतपुर का किला घेरे हुये थे) को पीछे हटने पर मजबूर कर दिया। इस सामयिक सहायता से कृतज्ञ होकर छत्रसाल ने उसे अपने राज्य का तृतीय भाग प्रदान किया। तद्उपरान्त बाजीराव प्रथम ने बुन्देलखंड में मिले अपने भूखण्डों पर अपने सूबेदार नियुक्त किये।

सन् 1742 ई0 में झाँसी क्षेत्र पर उसने अपना प्रथम सूबेदार नारोशंकर (1742–1756 ई0) को झाँसी का सूबेदार नियुक्त किया। इस समय सम्पूर्ण झाँसी नगर पर गोसांई का अधिपत्य था। उस समय वीरसिंह देव (1606–1625 ई0) निर्मित झाँसी दुर्ग के चारों ओर गौसांई के मठ, अखाडे, हवेलियां, खेत, बाग़ एवं शिवालय स्थित थे। एक विवरण के अनुसार उस समय गोसांई के चार अखाड़े व मठ मौजूद थे। रानी लक्ष्मीबाई से पूर्व झाँसी क्षेत्र में गोसांइयों के अनन्त, आभात, आखात और नागा नामक चार मठ स्थित थे। यह क्रमशः गोसांईपुरा, ओरछागेट (अन्दर व बाहर), फूटा चौपड़ा और गणेश बाजार में स्थित थे।[1]

इसके अतिरिक्त अमरा (अमरगढ़) भी गोसांई के अधिकार में था। इसी समय नारो शंकर को गोसांईयों से झाँसी खाली करवाने

---

1. भोंडेले, कृष्ण बिहारी लाल; एक लेख जो महाराष्ट्र परिषद स्मारिका में सन् 1977–78 में छपा था।

के लिये सैन्य शक्ति का प्रयोग करना पड़ा। गोसांई के दल का नेतृत्व राजेन्द्र गिरि गोसांई कर रहा था। दो दिन के युद्ध के उपरान्त भी झाँसी एवं उसके दुर्ग पर अधिकार प्राप्त नहीं हो पाया अतः नारी शंकर ने राजेन्द्र गिरि को झॉसी के उत्तर–पूर्व में 32 मील दूर मोंठ गॉव को जागीर के रुप में दे दिया। यहॉ पर उसने अपने लिये एक गढ़ी का निर्माण कर लिया। राजेन्द्र गिरि ने वहीं पर (मोठ में) अपनी नागा पलटन को रख कर एक सैनिक छावनी बना ली।[1] धीरे–धीरे पड़ोस के गॉवों पर भी राजेन्द्र गिरि ने अपने अधिकार में कर लिया।

सन् 1750 में झॉसी के सूबेदार नारो शंकर ने अपने पूरे सैन्य दल के साथ मोंठ पर आक्रमण किया। नागा गोसांई इस अचानक हमले के लिये तैयार नहीं थे इसलिये अन्हें मोंठ छोड़ कर भागना पड़ा।

राजेन्द्र गिरि वहॉ से अपनी नागा पलटन के साथ इलाहाबाद पहॅुच गया और बहॉ नवाब सफदरजंग के सिपाहियों को अपनी सेवायें अर्पित की।[2]

सफदरजंग ने राजेन्द्र गिरि को अपनी फौज का नायक बना लिया परन्तु राजेन्द्र गिरि ने कुछ शर्तो पर उसके अधीनस्थ सेवा स्वीकार की।

---

1. बिलग्रामी, मुर्तजा हुसैन; हदीकतुल–अकलीम पृष्ठ–168

2. जनरल एशियाटिक सोसायटी बंगाल (1789) पृष्ठ–79ए

राजेन्द्र गिरि की मृत्यु के बाद उसके मुख्य शिष्य उमराव गिरि एवं अनूप गिरि ने काफी समय तक अवध के नवाबों की सेवा की।[1] अनूप गिरि को राजा हिम्मत बहादुर की उपाधि विभूषित किया गया। वह मराठों, बांदा के नवाब एवं अंग्रेजों की सेवा में रहा। इस प्रकार बुन्देलखंड में मराठा सत्ता के पतन तथा अंग्रेजी सत्ता के अविर्भाव के समय इस क्षेत्र की राजनीति में गोसांईयों का वर्चस्व रहा और गोसांइयों ने इस क्षेत्र की राजनीति को कई दशकों तक प्रभावित किया।

1. गुप्ता भगवानदास; मस्तानी बाजीराव और उनके वंशज बांदा के नवाब, पृष्ठ–49

अध्याय–चतुर्थ

राजेन्द्र गिरि गोसांई

अध्याय—चतुर्थ

राजेन्द्र गिरि गोसांई

राजेन्द्र गिरि नागा गोसांई और सन्यासी था। झांसी नगर पर राजेन्द्र गिरि का शासनकाल ही गोसाई सत्ता के उदय का समय माना जाता है। सन् 1742 ई. में जब नारों शंकर (1742ई—1756 ई.) झाँसी का गर्वनर बना उस समय नागा सेना का प्रमुख राजेन्द्र गिरि गोसांई ही झाँसी नगर का शासक था। राजेन्द्र गिरि को कुछ स्थानों पर इन्द्र गिरि नाम से भी उल्लेखित किया गया।[1] अपने शासनकाल के दौरान राजेन्द्र गिरि ने 1742 ई. में झांसी में एक छोटी सी गढ़ी बनवा रखी थी। इसके पास ही एक विशाल शिवालय एवं बावड़ी निर्मित थी।

राजेन्द्र गिरि दतिया के जोगी ध्यान गिरि का शिष्य था और संभवतः स्वयं भी दतिया का रहने वाला था।[2] ओरछा राजा पृथ्वी सिंह ने 1735 ईस्वी में झांसी के प्रशासक के रुप में राजेन्द्र गिरि को दुर्गाध्यक्ष (किलेदार) बनाया था। इन्दौर के महाराजा मल्हार राव होल्कर के सेनापतित्व में मराठों ने 1735 ई. में बुन्देलों पर आक्रमण कर दिया। इस राजनैतिक उथल—पुथल का लाभ उठाते हुये बुन्देलों द्वारा नियुक्त झाँसी के प्रशासक राजेन्द्र सिंह गोसांई ने अपना स्वतंत्र अस्तित्व कायम कर लिया। उसने झाँसी में किले के पास गुसाईपुरा,

---

1. जोशी, ईला बसंती; झांसी गजेटियर, 1965, पृष्ठ—48
2. मुंशी, श्याम लाल; तवारीखे बुन्देलखण्ड भाग—2, पृष्ठ—158

बस्ती बसाकर, दुर्ग पर अपना स्वत्व कायम कर लिया। ये लोग उस समय भजन–पूजन एवं खेती–बाड़ी करते थे। इसी समय इन लोगों ने झांसी में नारायण बाग, दीक्षित बाग, सुगन्ध पुरी का बगीचा और सुन्दर पुरी के बगीचों का निर्माण किया। यह सभी बाग गोसाईयों द्वारा ही निर्मित है और अभी भी झाँसी शहर में देखे जा सकते हैं।

(अ) राजेन्द्र गिरि गोसाई और नारो शंकर

मराठा सरदार नारो शंकर के 1742 ईस्वी में झांसी का गर्वनर बनने पर राजेन्द्र गिरि गोसाई झांसी नगर का शासक था। झांसी का गर्वनर बनते ही 1742 ई. के अन्त में नारो शंकर ने राजेन्द्र गिरि और उसकी नागा पलटन को मोठ[1] की जागीरदारी देकर छुटकारा पाया। मराठा प्रशासक नारो शंकर ने गोसांई महन्तों को भुमिदान तथा अन्य सुविधायें प्रदान कर सम्मानित किया।[2] राजेन्द्र गिरि अपने गिरि वर्ग नागा गोसाई सैनिकों के साथ मोंठ चला गया। उसी समय पुरी वर्ग के असैनिक गोसांई (जो केवल पूजा अर्चना एवं खेती बाड़ी किया करते थे) झांसी में ही रहे। राजेन्द्र गिरि ने मोंठ की जागीर मिलने पर अपने लिये एक गढ़ी का निर्माण कराया और उसको अपना निवास स्थान बना लिया। यही उसने अपनी सैनिक छावनी बनाकर आस–पास के 114 ग्रामों पर अधिकार जमा लिया। उसने अमरा में एक गढ़ी का निर्माण कराया और उसका नाम अमरगढ़ रखा। राजेन्द्र गिरि ने 1745 ई. में बाकायदा राजतिलक करवा कर

---

1. मोठ– झांसी से उत्तर–पूर्व में 32 कि.मी. दूर स्थित है। यहां पर गोसाईयों द्वारा निर्मित गढ़ी अभी भी मौजूद है।

2. नारो शंकर द्वारा गोसंई महन्तो को प्रदत्त भुमिदान की सनद म.प्र. के जनपद शिवपुरी में ग्रम खैरवास के महन्त विजयराम भारती के पास सुरक्षित है।

अपने को "बुन्देलखण्ड का राजा" घोषित कर दिया। छत्रसाल द्वारा प्रदत्त बुन्देलखण्ड के पेशवाई हितों की देख–रेख करने वाले अधिकरी चिमनाजी अप्पा भी इन्द्रगिरि का कोई विरोध नहीं कर पाये। उसकी बढ़ती हुयी शक्ति से घबड़ा कर झाँसी के समकालीन मराठा गनर्वनर नारो शंकर ने 1750 ईस्वी में मोठ पर अचानक हमला कर दिया एवं राजेन्द्र गिरि की सैन्य शक्ति को तहस–नहस कर दिया। राजेन्द्र गिरि इस अचानक हमले को तैयार न था अतः वह मोंठ छोड़कर इलाहाबाद भाग गया।[1] इससे नारो शंकर को अपनी सत्ता के लिये चुनौती बने राजेन्द्र गिरि गोसांई से छुटकारा मिल गया।

(ब) राजेन्द्र गिरि और अवध के नबाव सफदर जंग

नारो शंकर द्वारा पराजित होने के उपरान्त 1750 ईस्वी में राजेन्द्र गिरि गोसांई अपनी नागा पलटन के साथ इलाहाबाद चला गया। इलाहाबाद पहुंचकर राजेन्द्र गिरि ने अवध के नवाब सफदर जंग के सैनिकों की बहुमूल्य सेवा की। प्रथम पठान युद्ध में अहमद खां बंगश के इलाहाबाद होने के समय फरवरी 1751 ईस्वी में उसने अवध की सेना की मदद की। बाद में राजेन्द्र गिरि का परिचय सफदर जंग से करवाया गया। राजेन्द्र गिरि की वीरता से प्रभावित होकर सफदर जंग ने राजेन्द्र गिरि को अपनी सेना का मुख्य कमांडर (सेनानायक) नियुक्त किया।[2] राजेन्द्र गिरि गोसांई ने नबाव सफदर

---

1. बिलग्रामी जुनैद, हदि कुतुब अकलीय; पृष्ठ–177
2. श्रीवास्तव, आशीर्वादी लाल; अवध के प्रथम दो नबाव, पृष्ठ–266

जंग की अधीनस्थ सेवा को दो शर्तो पर स्वीकार किया। यह शर्ते इस प्रकार से थी

1. उसके लिये प्रणाम करना आवश्यक नहीं होगा।
2. अपने स्वामी के अनुचर वर्ग में होते हुये भी उसको आज्ञा दी जाये कि वह अपने नक्कारों (नगाड़ों) को बना सके।[1]

राजेन्द्र गिरि अपने कुछ वीर शिष्यों के साथ सफदरजंग की सेना में शामिल हो गया। ये सैनिक सर्वथा दिगम्बर रहा करते थे तथा उनके शरीरों पर राख मली होती थी और उनके केश लबे थे। सफदर जंग की सेना में गोसांई नागा सैनिक अपने अलग खान पान सहित तंबुओं में रहा करते थे। प्रथम पठान युद्ध में इन तबुओं में रहते हुये राजेन्द्र गिरि अपने नागा सैनिकों के साथ पठानों पर दिन में दो बार टूट पड़ता था। इनमें से कुछ को मारकर वह अपने तंबुओं की ओर वापस आ जाता था जो पुराने शहर और किले के बीच में थे। इस प्रथम पठान युद्ध में राजेन्द्र गिरि नबाव सफदर जंग की ओर से बड़ी वीरता से लड़ा। इसके फलस्वरूप अप्रैल 1751 में अहमद खां बंगश ने इलाहाबाद ने अपना घेरा वापस उठा लिया और फरूर्खाबाद को वापस हो गया।

वही द्वितीय पठान युद्ध (1751–1752 ईस्वी) में इन्ही दिगम्बर गोंसाई नागा सैनिकों ने पठानों के छक्के छुड़ा दिये थे।[2] सफदर जंग ने इसी वीरता के फलस्वरूप राजेन्द्र गिरि गोसांई को सहारनपुर

---

1. जनरल एशियाटिक सोसायटी बंगाल (1879), पृष्ठ–69 (ए)
2. श्रीवास्तव ए.एल.; अवध के प्रथम दो नबाव, पृष्ठ–178

और उसके शिष्य उमराव गिरि को इटावा तथा अनूप गिरि को कोड़ा का फौजदार नियुक्त किया।[1]

राजेन्द्र गिरि गोसांई को 12 जुलाई 1752 ईस्वी में यमुना पार के फौजदार बब्लू जाट के आतंक और लूट पाट को दबाने के लिये सफदरजंग ने भेजा। राजेन्द्र गिरि गोसाई के नेत्व में सफदरजंग की सेना ने बब्बू जाट के विरूद्ध आक्रमण कर दिया। इससे घबड़ा कर बब्लू जाट यमुना पार कर बल्लभगढ़ भाग गया।[2]

सफदरजंग का राजेन्द्र गिरि पर विश्वास बढ़ता जा रहा था। उसने राजेन्द्र गिरि जैसे अपने कृपापात्रों को उपजाऊ जिले दे दिये थे। वहीं कर संग्रह में कठोरता से मुस्लिम जमीदारों और धर्म परायण सैय्यदों का बहुत क्रोध आया क्योंकि शताब्दियों से उनके साथ अपेक्षाकृत सद्व्यवहार होता था।[3]

सफदरजंग के हिन्दुस्तानी सैनिकों में गोसांई नागा सन्यासियों की 'नागा सेना' को सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना जाता था। सफदरजंग भी उन पर पूरा भरोसा करता था। वह अपने मुख्य कमांडर इस्माइल वेग से अधिक भरोसा गोसांई कमांडर (सेनानायक) राजेन्द्र गिरि पर करता था।[4] इस प्रकार सफदरजंग की सेना में राजेन्द्र गिरि गोसांई का स्थान महत्वपूर्ण था।

---

1. श्रीवास्तव ए.एल.; (वही) पृष्ठ–215
2. श्रीवास्तव, ए.एल.; (वही), पृष्ठ 216–217
3. श्रीवास्तव ए.एल. वही पृष्ठ–225
4. श्रीवास्तत ए.एल., वही पृष्ठ–265, 266

(स) इमादुल्मुल्क से युद्ध व मृत्यु

सफदरजंग की तानाशाही के विरूद्ध मार्च 1753 ईस्वी में दिल्ली में सार्वजनिक रोष पराकाष्ठा पर पहुंच गया था। इसके बाद बादशाह ने विधिपूर्वक सफदरजंग को प्रधानमंत्री के पद से मुक्त कर दिया और उसकी जगह 13 मई 1753 ईस्वी को इन्तिजामुद्दौला को प्रधानमंत्री नियुक्त कर दिया। सफदरजंग के दिल्ली से हटने के एक मास के अंदर ही 17 या 18 वर्ष का लड़का इमादुल्मुल्क शाही सेनाओं का सर्वोपरि नेता बन गया। वह भूतपूर्व वजीर के सिपाहियों को अधिक वेतन और पुरस्कारों के प्रस्तावों से फुसला कर बादशाही सेना को बढ़ाने के कार्य में अपनी स्वाभाविक स्फूर्ति और उत्साह से जुट गया।

उसने एक घोषणा की कि सफदरजंग का प्रत्येक सिपाही जो पाथ दल का सदस्य हो उसे 50 रू. का पुरस्कार और एक मास का अग्रिम वेतन (50 रू.) दिया जायेगा यदि वह अपने मालिक को छोड़कर शाही सेना में भरती हो जाये। इन प्रस्तावों से लोभित होकर हजारों की तादाद में सैनिक इमादुल्मुल्क की सेना में भर्ती हो गये।[1] उसने लगभग 23 हजार सैनिकों को अलग दल में संगठित किया, जो बदखशी पलटन के नाम से जन साधारण में प्रसिद्ध हुयी। इस प्रकार इमादुल्मुल्क ने भूतपूर्व वजी को और भी निर्बल कर दिया।

साम्राज्यवादियों के हमले से भूतपूर्व वजी दक्षिण की ओर हटने को विवश हो गया और कुछ दिनों की लड़ाई के बाद उसे शहर से

---

1. श्रीवास्तव, ए.एल.; अवध के प्रथम दो नबाव, पृष्ठ–246

करीब 4 मील दक्षिण तालकटोरा की ओर हटना पड़ा। सफदरजंग के पीछे इमादुल्मुल्क लगा रहा। करीब–करीब प्रतिदिन उनके बीच भिड़न्तें होती रहीं जिनमें जाटों और नागाओं का मुख्य भाग रहता था।

अपने मृत्युपर्यन्त अनुचरों के साथ राजेन्द्र गिरि सुलभ अवसर पाकर शाही तोपखाने पर टूट पड़ता और कुछ तोपचियों को मारकर अपनी जगह वापस आ जाता। 14 जून 1753 को इमादुल्मुल्क और सफदरजंग की सेना तालकटोरा के मैदान में आमने सामने आ गयी। सफदरजंग स्वयं कुछ दूर से अपने आदमियों का मार्गदर्शन कर रहा था। तीसरे पहर में जाट और नागा सेना ने साम्राज्यवादियों पर हमला कर दिया और मराठा एवं बदखशी सिपाहियों को बड़ी संख्या में मार गिराया। इसमें राजेन्द्र गिरि गोसांई ने बड़े शौर्य और पराक्रम का परिचय दिया।

इसी समय रणक्षेत्र में इमादुल्मुल्क की ओर से चली एक गोली से राजेन्द्र गिरि गोसांई घायल हो गया और अगले ही दिन उसकी मृत्यु हो गयी।[1] इस संबंध में कहा जाता है कि इमादुल्मुल्क की ओर इस्माइल खां ने राजेन्द्र गिरि को पीछे से गोली मार दी थी जो उसके लिये घातक सिद्ध हुयी। इस प्रकार सफदरजंग की सेना के सबसे बड़े वीर और उसके सबसे अधिक निडर सेनापति ने अपने स्वामी के हित में अपने प्राणों का न्योछावर कर दिया।[2]

---

1. गुप्ता भगवान दास; मस्तानी बाजीराव और उनके वंशज बांदा के नवाब, पृष्ठ–49
2. श्रीवास्तव ए.एल.; अवध के प्रथम दो नबाव, पृष्ठ–246

राजेन्द्र गिरि की मृत्यु से भूतपूर्व वजीर की सेना में अंधकार छा गया और सफदरजंग पूरे दस दिनों तक सर्वथा निश्चेष्ट रहा। वह इन दिनों बिलकुल भी अपने महल से बाहर नहीं निकला और उसने सब लड़ाई स्थगित कर दी।

राजेन्द्र गिरि के पट शिष्य उमराव गिरि को नबाव ने नागा सेना का सेनापति नियुक्त किया। राजेन्द्र गिरि के देहान्त के बाद नबाव सफदरजंग स्वयं किसी युद्ध में शामिल नहीं हुआ।[1] इस प्रकार अपने स्वामी के पक्ष में इमादुल्मुल्क से लड़ते हुये एक वीर सेनानायक का अंत हो गया। नई दिल्ली के तालकटोरा में राजेन्द्र गिरि गोसांई की समाधि निर्मित है।

---

1. सरकार जदुनाथ; मुगल साम्राज्य का पतन, भाग–2 पृष्ठ–314
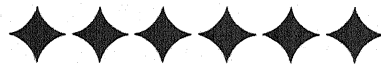
अध्याय – पंचम

अनूप गिरि गोसांई (हिम्मत बहादुर)

अध्याय–पंचम

अनूप गिरि गोसांई

(राजा हिम्मत बहादुर)

अनूप गिरि गोसाई को एक साहसी और विलक्षण बुद्वि वाले सेनानायक के रूप में जाना जाता हैं। गोसांई सेनानायकों में वह सबसे कूटनीतिज्ञ था। अपने 1750 ईस्वी से 1804 ईस्वी तक के 54 बर्षो के कार्यकाल में हिम्मत बहादुर गोसांई बुन्देलखण्ड के राज्यों का कभी निर्माता बना तो कभी मानमर्दनकर्ता साबित हुआ।[1] शुजाउददौला की ओर से अंग्रेजों से हुये बक्सर के युद्व में दिखायी शूरवीरता से प्रभावित होकर अवध के नबाब ने अनूपगिरि को "हिम्मत बहादुर" की उपाधि से विभूषित किया तो अंग्रजों ने उसे महाराजा की पदवी प्रदान की ।

हिम्मत बहादुर के प्रांरभिक जीवन के बारे में प्राप्त जानकारी के अनुसार गोसांई सेनानायक राजेन्द्र गिरि गोसांई कुलपहाड[2] से विधवा ब्राहम्मणी (सनाड्य) के दो बालक अपने साथ ले आया था। विधवा ने उस समय पड़े अकाल में ये दानों बालक राजेन्द्र गिरि को दे दिये थे।[3] राजेन्द्र गिरि ने उनका पालन पाषण अपने झॉसी स्थित अखाड़े में किया था। प्ररम्भ में उन्हें धार्मिक शिक्षा के अतिरिक्त सैन्य शिक्षा भी दी। इनमें से एक नाम उमराव गिरि था व दूसरे का नाम अनूप गिरि था। कालांतर में राजन्द्र गिरि अवध के नवाब सफदर जंग का कृपा

---

1. त्रिपाठी काशीप्रसाद, बुन्देलखंड का वृहद इतिहास, पृष्ठ 211
2. कुलपहाड़ झॉसी मानिकपुर रेलवे लाईन पर महोबा से पहले।
3. पद्रमाकर; हिम्मत बहादुर विरदावली (संपादक भगवानदीन) पृष्ठ–18

पात्र बन बया था और अपनी शूरवीरता तथा अपने नागा योद्धाओं के लिये बहुत विख्यात हो गया। राजेन्द्र गिरि की इमादुल मुल्क के साथ युद्ध करते हुये 14 जून, 1753 ई० में मृत्यु हो गयी थी। उसके बाद उमराव गिरि तथा अनूप गिरि उसके उत्तराधिकारी बने।[1] इनमें अनूप गिरि को शुजाउद्दौला ने हिम्मत बहादुर की उपाधि दी थी तथा अंग्रेजों ने उसे राजा की पदवी दी थी। वह बहुत चालाक, वीर और कूटनीतिज्ञ था।[2]

हिम्मत बहादुर ने सफदरजंग के बाद शुजाउद्दौला, जवाहर सिंह जाट, रघुनाथ दादा (1766 ई.) आसफुद्दौला, मराठा एवं अंग्रजों को अपनी सेवाये अर्पित की एवं उनके लिये लड़ाईयॉ लड़ी। इस प्रकार बुन्देलखंड में पतन की ओर अग्रसर मराठी सत्ता तथा अंग्रेजी सत्ता के आविर्भव का मध्यकाल "हिम्मत बहादुर काल" के नाम से जाना गया।

अ– हिम्मत बहादुर और अवध का नवाब शुजाउद्दौला

हिम्मत बहादुर गोसांई अपने गुरू राजेन्द्र गिरि के साथ नवाब सफदरजंग की ओर से द्वितीय पठान युद्ध (1751–1752 ई0) में शामिल हुआ। अन्य युद्ध में भी वह अपने गुरू के साथ ही रहा। इमादुल मुल्क से लड़ते हुये 8 जून, 1753 ई0 में राजेन्द्र गिरि की मृत्यु के बाद, अनूप गिरि (हिम्मत बहादुर) तथा उसका भाई उमराव गिरि नागा सेना के कमान्डर बने। सफदरजंग की मृत्यु के बाद उसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र एवं अवध का तृतीय स्वतन्त्र शासक शुजाउद्दौला

---

1. गुप्ता वी.डी. 'मस्तानी बाजीराव और उनके वंशज नवाब बॉदा" पृष्ठ 49
2. सरकार यदुनाथ; मुगल साम्राज्य का पतन" पृष्ठ–211
3. "ए डिक्शनरी ऑफ इनिडयन हिस्ट्री" पृष्ठ 452

(1754—1775 ई0) अवध का नवाब बना। शुजाउद्दौला को आलम गीर द्वितीय (1754—1759ई0) तथा शाह आलम द्वितीय (1759—1806ई0) नामक मुगल सम्राटों से वजीन का ओहदा मिला था।

अनूप गिरि हिम्मत बहादुर गोसांई तथा उसका भाई प्रारम्भ में शुजाउद्दौला की सेवा में ही रहे। हिम्मत बहादुर ने नवाब शुजाउद्दौला के लिये शुक्रताल का युद्व (1759ई0) एवं पानीपत का युद्व (1761ई0) में लड़ा था। सन् 1762 ई0 में हिन्दूपत में वह शुजाउद्दौला की ओर से लड़ा और घर गया। इसके बाद वह अपने स्वामी (अवध के नवाब) की ओर से बक्सर का युद्व भी 1764 ई0 में लड़ा।[1] इस युद्व में शुजाउद्दौला अंग्रेजी सेना के मध्य फंस गयाथा जिसे वड़ी फुर्ती और साहस के साथ अनूपगिरि गोसांई ने बाहर निकाला। इससे प्रसन्न होकर नबाब शुजाउद्दौला ने अनूप गिरि को "हिम्मतबहादुर" की उपाधि प्रदान की और उसके दौआब एवं बिन्दकी की जागीर दी। बाद में हिम्मत बहादुर वहां की सेवा छोड़ कर भाग गया तथा 1767 ई0 में वह फिर शुजाउद्दौला की सेवा में आ गया।[2]

हिम्मत बहादुर का बुन्देलखंड अभियान

अवध का नवाब शुजाउद्दौला इलाहाबाद का मुगल शासक होने के कारण बुन्देलखंड को अपने राज्य का अंग मानता था। इसी आधार पर उसने वशीर खॉ और हिम्मत बहादुर गोसांई के नेतृत्व में सन् 1762 ई0 में एक सेना बुन्देलखण्ड पर चढाई करने के लिये भेजी। शीघ्र इस सेना ने मोंठ और उसके आस—पास के कस्बों पर अपना

---

1. सरकार यदुनाम "मुगल साम्राज्य वाद का पतन" भाग—3 पृष्ठ—211
2. गुप्ता बी.डी.; बाजीराव मस्तानी और उसके वंशज नवाब बॉदा पृष्ठ 59

अधिकार कर लिया।[1] झाँसी मे इस समय नारो शंकर दोबारा सूबेदार नियुक्त होकर आया था। 31 जनवरी, सन् 1762 ई0 में उसने झॉसी पर अपना अधिकार कर लिया। अवध के नवाब ने मोहम्मद बशीर खॉ को झाँसी का अधिकारी बनाया, परन्तु 4 वर्ष बाद ही सन् 1766 ई0 में मलहार होल्कर ने हमला कर झॉसी को मुक्त कराकर फिर मराठा ध्वज झॉसी पर फैहरा दिया।[2]

सन् 1774 ई0 में एक बार फिर हिम्मत बहादुर के नेतृत्व में शुजाउददौला ने एक सेना फिर झॉसी पर हमला करन के लिये भेजी परन्तु अचानक जनवरी, 1775 ई0 में नवाब शुजाउद्दौला की मृत्यु हो जाने के कारण यह अभियान पूरा न हो सका।[3]

जवाहर सिंह जाट एवं रघुनाथ दादा से संपर्क

हिम्मत बहादुर गोसांई को सन् 1762 ई0 में हिन्दुपन से पराजय एवं बक्सर के युद्ध 1764 ई. मे हुयी पराजय के बाद उमरावगिरि सहित शुजाउद्दौला की सेवा छोड़ कर भागना पड़ा।[4] इसके बाद इन गोसाई सरदारों ने अपने जीवन यापन के लिये भरतपुर के राजा जवाहर सिंह जाट की सेना में सेवा स्वीकार कर ली। दिल्ली के आक्रमण में हिम्मत बहादुर गोसांई ने अपनी सेना सहित जवाहर सिंह जाट का सहयोग किया। हिम्मत बहादुर दिसम्बर 1766 ई0 में रघुनाथ दादा के पक्ष में हो गये।[5] इसके बाद एक वर्ष तक हिम्मत बहादुर अपने भाई उमराव

---

1. श्रीवास्तव, ए0 एल0; शुजाउद्दौला भाग–1, पृष्ठ 122
2. "झॉसी गजेटियर" पृष्ठ– 48
3. शेजवलकर, डी0 एस0 "डेन्जर टू झॉसी" पृष्ठ 49
4. श्रीवास्तव भगवानदास "बुन्देलों का इतिहास" पृष्ठ 180
5. सरकार यदुनाम साम्राज्य का पतन" भाग–3 पृष्ठ 211

गिरि सहित रघुनाथ दादा की सेवा में रहा।

हिम्मत बहादुर और नजफ खॉ

बाद में जैसे ही मराठा उत्तर भारत की लड़ाईयों से हटने लगे तो हिम्मत बहादुर अपने गोसांई साथियों सहित शुजाउद्दौला के पास पुनः वापस चला गया। सन् 1775 ई0 में शुजाउद्दौला की मृत्यु के पश्चात उसका पुत्र आसफउद्दौला अवध का शासक बना। कुछ समय तो गोसांई उसकी सेवा में रहे परन्तु राजकीय खर्च में बचत करने के लिये आसफउद्दौला ने नागा सैनिकों तथा सरदारों को अपने यहां से निकाल दिया। इस प्रकार बेकार हो जाने पर हिम्मत बहादुर तथा उमराव गिरि सन् 1776 ई0 में डींग के घेरे में वजीर नजफ खॉ (1772–1782ई0) से मिले।[1] धीरे–धीरे हिम्मत बहादुर, नजफ खॉ का कृपापात्र बन गया।

हिम्मत बहादुर हिनदू राजाओं के साथ बातचीत करने में नजफ खॉ का प्रधान सलाहकार बन गया। हिम्मत बहादुर अपने गोसांई नागा सैनिकों सहित लगभग 8 वर्षो तक नजफ खॉ के साथ रहा। नजफ खॉ की 6 अप्रैल 1782 ईस्वी में हुयी मृत्यु के बाद जब मुख्तियार के पद के लिये संघर्ष शुरू हुआ तो उसने उसके पुत्र अफरासियाब का पक्ष लिया। इसके बाद जब अफरासियाब पदारूण हो गया तो वह (अक्टूबर 1783 ईस्वी–1784 ई0 तक अफरासियाब के साथ रहा।

इस प्रकार गोसांई बंधु 8 वर्ष तक वजीर नजफ खॉ तथा उसके उत्तराधिकारियों की सेवा करते रहे परन्तु अफरासियाब की अचानक

---

1. सरकार यदुनाम; साम्राज्य का पतन" भाग–3 पृष्ठ 211

हत्या के बाद वह अधर में लटक गये बाद में हिम्मत बहादुर अपनी सेना सहित महाद जी के पास पहुँच गया।

ब. हिम्मत बहादुर और महादजी सिंधिया

छत्रसाल की मृत्यु के बाद हुये उसके राज्य के बंटवारे के अनुसार बुन्देलखण्ड में राज का एक हिस्सा मराठा पेशवा को दिया गया। दिंसम्बर 1784 ईस्वी में महादजी सिंधिया को मराठा साम्राज्य की रीजन्ट नियुक्त किया गया। उस समय महादजी सिंधिया के बढ़ते प्रभाव को देखकर अनूपगिरि गोसांई (हिम्मत बहादुर) उसके साथ हो गया। महादजी ने उमराव गिरि तथा अनूपगिरि गोसांई को अपनी मित्र बना लिया।[1] उसने इन्हें उपयोगी कार्य दिया।

कुछ समय तो सब ठीक चला पर स्वभाव से ही षणयत्रंकरी प्रवृत्ति का होने के कारण अनूपगिरि ने अलीगढ़ के किलेदार जहांगीरखान को महादजी सिंधिया के विरूद्व भड़काया। जैसे ही महादजी को गोसांई सेनानायकों के इस षणयंत्र का पता लगा, असने हिम्मत बहादुर को सेना सहित अपनी सेवा से हटाने का निश्चय किया। उसने अपने प्रतिनिधि केशवपन्त को भेजा कि वह बुन्देलखंड तथा दो आब में गोसांइयों की जागीरों पर अधिकारी कर ले। महादजी ने हिम्मत बहादुर को यह आदेश दिया कि 20 लाख रूपये प्रतिवर्ष की जो जागीर उसके पास थी, उसे वह समर्पण कर मराठा छावनी खाली कर दे। इसके बाद जैसे ही हिम्मत बहादुर को यह आदेश प्राप्त हुआ असने महादजी सिंधिया से दया की भीख मांगते हुये इस आदेश को वापस

---

1. सरदेसाई जी. एस. मराठों का नवीन इतिहास, तृतीय खंड (आगरा–1972) पृष्ठ 149

लेने की प्रार्थना कि। महादजी गोसांई बंधुओं की इस प्रार्थना को ठुकरा नहीं सका अतः उसने मोंठ का तालुका तथा वृंदावन की एक जागीर इनको पुनः प्रदान कर दी। उसने प्रतिबंध यह रखा कि हम जागीर के खर्च से हिम्मत बहादुर अपनी सेना का खर्च उठायेगा तथा उसकी (महादजी सिंधिया) सेवा में निरंतर बना रहेगा।

बुन्देलखण्ड से दूर रहने के लिये उसने हिम्मत बहादुर गोसांई को सेना सहित वृंदावन के गोसांई आग्रम में रहने के आदेश दिये।[1] उसका सोचना था कि दूर रहने के कारण गोसांई बंधु मराठों के विरूद्व कोई षणयंत्र नहीं कर पायेंगें। उसने हिम्मत बहादुर को एक सन्यासी की भांति वृंदावन के आश्रम में रहने के आदेश दिये।

महादजी सिंधिया के इस आदेश का गोसांई बंधुओं ने विरोध किया और मराठा साम्राज्य के विरूद्व झंडा फहरा दिया। उमराव गिरि ने उन मराठा अधिकारियों का विरोध किया जो दो आब स्थित गोसांइयों की जागीर पर आविप्त्य स्थापित करने गये थे। उमराव गिरि ने इन मराठा अधिकारियों के विरूद्व दोआब के स्थानीय जागीरदारों प्रतिरोध के लिये प्रेरित किया अतः इन मराठा अधिकरियों को न केवल वहां से वापस आना पड़ा बल्कि इन्हें बंदी बना लिया गया और बाद में इनकी हत्या भी कर दी गयी। इसमें मराठा सरदार केशवपंत भी शामिल था[2]

इसी बीच महादजी सिंधिया ने 1787 ईस्वी में लालसोट (जयपुर)

1. महादजी सिंधिया सवंधी ऐतिहसिक पत्र संख्या 351,432 एवंसरकार, यदुनाथ मुगल साम्राज्य का पतन, भाग–3 पृष्ठ–212
2. महादजी सिंधिया संबंधी ऐतिहासिक पत्र संख्या 415 एवं जनरल एशियाटिक सोसायटी बंगाल 1879, पृष्ठ–474

अभियान के लिये प्रस्थान किया। उसी समय जाकर हिम्मत बहादुर नें वृंदावन से कूच करते हुये दोआब में अपने भाई उमराव गिरि का सहयोग किया। इसके बाद गोसांईबंधु अपनी सेना सहित अवध के नबाब की सेना मं पुनः शामिल हो गये। लालसोट (जयपुर) अभियान में महादजी सिंधिया की पराजय के बाद हिम्मत बहादुर पुनः सक्रिय हुआ और उसनें फिरोजाबाद पर अधिकर कर लिया। उसके भाई उमराव गिरि ने हस्याइल बेग से हाथ मिलाकर सिंतम्बर 1787 ई. में आगरा पर अधिकर कर लिया। महादजी सिंधिया की महत्वाकांक्षायें तेज होने पर उसने उमराव गिरि अप्रैल 1788 ईस्वी में धौलपुर में युद्ध कर उमराव गिरि को कैद कर लिया।

महादजी एवं हिम्मत बहादुर का पुनर्मिलन

उसी समय गुलाम कादिर ने दिल्ली में अपनी सर्वोच्चता स्थापित कर ली। इस परिस्थिति में महादजी ने उमराव गिरि को छोड़ दिया और हिम्मत बहादुर को पुनः अपनी सेना में शामिल कर लिया। इसके फलस्वरूप अक्टूबर 1788 में उसने राणाखान का सहयोग करते हये दिल्ली पर घेरा डाल दिया व 11 अक्टूबर को दिल्ली के किले में प्रवेश किया। दिल्ली का किला रूहेलखंउ की'रोहीला' सेनाओं द्वारा खाली कर दिया गया था। इस प्रकार 1788 के अंत में महादजी सिंहिधया हिम्मत बहादुर की मदद से पुनः एक बाद दिल्ली की गतिविधि का मुख्य केन्द्र बन गया। सफलता के बाद महादजी सिंधिया मथुरा लौट आये और पुत्र प्राप्ति की अकांक्षा में सिंधिया ने मथुरा के मंदिरों व वहॉ के ब्रहम्णों को भारी मात्रा में भेंट व दान दिये।

MARATHA TERRITORY

MARATHA DOMINION

BOUNDARY OF BUNDELKHAND

RIVERS

महादजी सिंधिया का गम्भीर रूप से बीमार होना

9 मार्च को महादजी की बीमारी शुरू हुई। शुरू से हल्का सा बुखार हुआ, जिसकी उपेक्षा की गई। फिर मुँह गर्दन छाती और शरीर पर सूजन आने लगी। हर तरह की दवाईयों का प्रयोग किया गया, लेकिन कोई लाभ नहीं हुआ।[1] 8 जून को, उसने हिन्दू और यूनानी बैद्यों को बहुत बुरी तरह फटकारा तथा अंग्रेज डाक्टर को बुलाने की धमकी दी। यधपि अंग्रेज डाक्टर महादजी ने अंग्रेज डाक्टर की सेवायें स्वीकार नहीं की क्योंकि अपने जीवन के विषय में उसे किसी विदेशी पर विश्वास नहीं था। कुछ समय के पश्चात उसके शरीर पर दर्द करने वाले फोडे निकल आये तथा उनमें से मवाद भी रिसने लगा। मवाद पड जाने से महादजी को चैन नहीं मिलता था। सारा दिन वह कराहता रहता था। 20 जून तक उसकी तकलीफ खतनाक स्थिति तक पहुँच गई। उसके जीवन की आशाएं तक छोड दी गई। बैद्यों की समझ से अच्छी से अच्छी दवाईयां जो कि इस बीमारी में हो सकती थी, महादजी को दी जा चुकी थी। लेकिन कोई भी दवा असर नहीं कर रहीं थी। महादजी मूर्च्छा की स्थिति को पहुँच गया।

तब यह विचार सामने आया कि यह रोग शारीरिक न होकर जादू टोने से संबंधित है। कई विद्वान ज्योतिषी बुलाये गये, सभी ने बैद्यों के इस मत का समर्थन किया, तब जांच पड़ताल शुरू कीगई कि यह पैशाचिक षडयन्त्र कौन कर रहा है। चारो तरफ इस जानकरी के लिए गुप्तचर फैलाये गये।

हिम्मत बहादुर का षडयन्त्र

14 जुलाई 1789 ई0 को गुप्तचरों ने सूचना दी की वृन्द्रावन में

1. पूना रेजी0, जि0, सं0 249 सरकार, सिंधिया रीजेन्ट, पृ0 5 एंव 17 सरकार, मुगल साम्राज्य का पतन, जि0 4 पृ0 2,8 एवं सरदेसाई, जि0 3 पृ0 210

एक स्त्री जगह—जगह डींग मारती फिरती है कि सिंधिया की बीमारी उसके जादू से हुई है। उस स्त्री को गिरफ्तार कर लिया गया। तब उसने बताया कि यह जादू उसने गोसांई हिम्मत बहादूर के कार्य कर्ताओं के निर्देश पर किया है।[1] उसकों सिंधिया के सामने लाया गया तो उसने अपना अपराध स्वीाकार करते हुए यह कहा, कि मुझे इस कार्य हेतु धन तथा अन्य सामग्री हिम्मत बहादुर के शिष्यों से प्राप्त हुयी थी। इसके साथ ही उक्त जादूगरनी ने यह भी स्पष्ट किया कि वह इस जादू टोने के प्रभाव को समाप्त भी कर सकती है। शीध्र ही उसने ऐसा मंत्र पढा जिससे महाद जी का दर्द कम होने लगा। अतः यह सिद्व हो गया कि यह जादू का ही प्रभाव था, जो कि गोसांई बंधुओं ने महाद जी का अन्ष्टि करने के लिए कराया था।[2]

हिम्मत बहादुर की गिरफ्तारी

उपरोक्त घटना से महाद जी को हिम्मत बहादुर के ऊपर बहुत क्रोध आया। इस गोसांई नेता के विश्वास धात के कारण महाद जी का मन घृणा से तथा प्रतिशोध से भर उठा। 21 जु0 1789 ई0 को महाद जी ने यह आदेश पारित किए कि हिम्मत बहादुर को तुरन्त बंदी बनाकर उसके पास लाया जाय। उसी समय मराठा सैनिकां ने हिम्मत बहादुर को बंदी बना लिया।

हिम्मत बहादुर द्वारा अलीबहादुर से संबंध स्थापित करना

जब सिंधिया के सैनिक हिम्मत बहादुर को लेकर महाद जी के

---

1. ग्रान्ट डफ मराठों का इतिहास, पृ0 594, सरकार, मुगल साम्राज्य जि0 4 पृ0 8—9 मार्डन श्रिव्यू मार्च 1944 में जदूनाथ सरकार का लेख, सरदेसाई, जि0 3, पृ0 210 इब्रातनामा फकीर खेरउद्दीन, जि0 3, पृष्ठ—300
2. सरकार, मुगल साम्राज्य, जि0 4, पृ0 –9 एवं सरदेसाई, जि0 3 पृ0 210

शिविर की तरफ आ रहे थे उसी समय हिम्मत बहादुर इन सैनिकों को धोखा देकर उनके घेरे में से भाग निकला, तथा पेशवा के ध्वज के नीचे, अली बहादुर के डेरे में जाकर उसने शरण ले ली।[1] इस पर महाद जी ने अली बहादुर के पास खबर भेजी कि हिम्मत बहादुर को उसके पास भेज दिया जाय। अली बहादुर ने उत्तर भेजा, कि न तो मैने अपराधी को बुलाया है, और न ही उसको मैने रोका है। यदि महाद जी चाहते है, तो स्वयं आकर उसको ले जाय। इस उत्तर से महाद जी बहुत उत्तेजित हो उठा[2]। इस विवाद को लेकर ऐसा प्रतीत हो रहा था कि इन दोनो मराठा सरदारों में किसी भी समय ग्रह युद्व आरम्भ हो जायेगा। जब महाद जी सिंधिया, हिम्मत बहादुर को अली बहादुर से प्राप्त न कर सका तो उसने हिम्मत बहादुर की पत्नी तथा बच्चों को बंदी बना लिया[3]।

अली बहादुर तथा महाद जी में वैमनस्य

अली बहादुर के अधीनस्थ पूना के मराठा सैन्य अधिकारी, इस विवाद से बहुत उत्तेजित हो गये। वे चिल्ला–चिल्ला कर कहने लगे कि गोसांई ने नेशवा के जरी पटके के नीचे शरण ली है इसलिये पेशवा के सम्मान और प्रतिष्ठा की रक्षा होनी चाहिए। अगर महाद जी ने इस विवाद में हस्तक्षेप किया, तो वह प्राणों की बाजी लगा देगें, और अंत तक गोसांई की रक्षा करेगें। परिणाम स्वरूप अली बहादुर ने इस विवाद को निपटाने के लिये नाना के पास पूना भेज दिया। 24 जु0 तक सिंधि

---

1. महाद जी सिंधिया संबंधी एति0 पत्र सं0 558,559 पूना रेजी0 जि0। पृ0 252, 253, 254, सरकार, सिंधिया, री जे0 पृ0 सं0 5,18 ग्रान्ट डफ, पृ0 594 सरदेसाई, जी0 एस0 मराठों का नवीन इति0 जि03, पृ0 211
2. पूना रेजी0, जि0।, पत्र सं0 255–257, सरकार, मार्डन व्यू मार्च 1944
3. सरकार, मुगल साम्रा0, जि0 4 पृ0 9 सरदेसाई, मराठों का नवीन, जि0 3 पृ 211

ाया के सैनिक अली बहादुर के शिविर का घेरा डाले रहे। दूसरी तरफ अली बहादुर के सैनिक भी तलवारे खींच कर पहरा देते रहे। कई प्रमुख मराठा सरदारों ने चाहा, कि विवाद निपट जाय परन्तु कोई भी निर्णय न हो सका। अंत में रन्ने खॉ के कहने से महाद जी ने अपने सैनिक वापस बुला लिए, तथा निर्णय पेशवा पर छोड़ दिया।

तुको जी होल्कर द्वारा अली बहादुर का समर्थन

पूना में इस विवाद की सूचना के पहुंचने के पश्चात महाद जी के प्रति पूना में विरोध और भी बढ़ गया। इधर मराठों के सम्मुख महाद जी की प्रतिष्ठा समाप्त हो गई। हिम्मत बहादुर ने कूटनीति का प्रयोग करके अली बहादुर को भडका कर मराठों में उसके महत्व को बढ़ा दिया। तुको जी होल्कर ने इसी बीच मथुरा पहुंच कर इस विवाद में रूचि ली, और महाद जी के विरूद्व उसने अली बहादुर का समर्थन किया। तुको के पहले ही बहुत प्रहार से महाद जी सिंधिया तिलमिला उठा अब तुको जी के द्वारा अली बहादुर का समर्थन करने से महाद जी की प्रतिष्ठा गिर गई।

मूलतः इस विवाद से यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो गई कि अली बहादुर सिंधिया के अधीन नहीं बल्कि उससे स्वतन्त्र है। जो लोग इस घटना से पहले हर मामले में सिंधिया की तरफ देखा करते थे, वे भीअब समझ गये कि अली बहादुर का पद सिंधिया के बराबर ही नहीं, बल्कि उससे ऊँचा है।[1]

1. पूना रेजी0, जि0 I,सं0 238,251, 252,253,254, पूना रेजी0 जि0 2, सं0 105,106,सरकार, मुगल साम्राज्य का पतन, जि0 4 पृष्ठ 9

तुको जी होल्कर द्वारा अली बहादुर को भडकाना

।। अगस्त [1] को तुको जी होल्कर अली बहादुर के डेरे में आया तथा उसे भडकाया, कि वह महाद जी के सामने न झुके और किसी भी स्थिति में गोसांई को महाद जी के सुपुर्द न करें[2]। यह पेशवा के गौरव का प्रश्न है, क्यांकि हिम्मत बहादुर गोसांई ने पेशवा के ध्वज का सहारा लिया है। सिंधिया उसका कुछ भी नहीं बिगाड सकेगा। यदि सिंधिया चाहता है कि हिम्मत बहादुर गोसांई को उसके सुपुर्द कर दिया तो वह स्वयं अली बहादुर के डेरे में आ कर याचना करके हिम्मत बहादुर को ले जाये[3]। जब महाद जी को हेल्कर के इस कुटिल व्यवहार की सूचना मिली, तो वह और भी उत्तेजित हो उठा।

हिम्मत बहादुर प्रकरण में नाना फडनीस द्वारा हस्तक्षेप

सन् 1789 ई0 में नाना फडनीस ने यह प्रस्ताव रखा कि हिम्मत बहादुर गोसांई को झांसी के दुर्ग में सम्मान पूर्वक रखा जाय, एवं उसकी जागीरें तथा सेना यथावत रहने दी जाय। जिनकी देखभाल महाद जी के अधीनस्थ कर्मचारी करें। हिम्मत बहादुर गोसांई भविष्य में किस प्रकार का आचरण करता है, यह देखने के पश्चात ही उसके बारे में निर्णय किया जाय[4]। महाद जी सिंधिया को नाना से ऐसे उत्तर की आशा न थी। अतः उसने नाना को पत्र का उत्तर देते हुए लिखा''कि अली बहादुर के सुझाव पर आपने यह आदेश जारी किया है। मैने आपको बार–बार पत्र लिखे उन पर आपने कुछ भी ध्यान नहीं दिया।

---

1. सरकार, जदुनाथ, महाद जी रीजे0 पृ0 23
2. पूना रेजी0, जि0 I , सं0 248
3. सरदेसाई, जी0 एस0 , मराठों का नवीन इतिहास, जि03, पृ0 211
4. सरकार, मुगल साम्राज्य का पतन, जि0 4 पृ0 11

इस आदमी ने मुझको मारने के लिए पैशाचिक जादू करवाया। जिसके कारण दो–तीन मास तक मुझको मारमिक पीडा होती रहीं। पता नहीं क्यों, फिर भी वह (हिम्मत बहादुर गोसांई) आपको अच्छा लगता है।[1] ऐसे ही विवाद में समय नष्ट होता रहा, तथा हिम्मत बहादुर, अलीबहादुर की शरण में ही बना रहा। सन् 1789 ई0 में महाद जी ने अलगढ तथा कोईल की जागीर अलीबहादुर के नाम कर दी। तब अलीबहादुर ने महाद जी से कहा, कि वह हिम्मत बहादुर के मामले से अपने को पीछे हटा ले तथा उसके परिवार के सदस्यों के चारों तरफ जो रक्षक तैनात कर रखे है उन्हें वापस हटाले।

व्यर्थ के विवाद में समय नष्ट होता रहा, तथा धनाभाव के कारण अलीबहादुर की अर्थिक स्थिति निरनतर दयनीय होती गई। उसने तुको जी होल्कर से आर्थिक सहायता के लिए निवेदन किय, लेकिन तुको जी ने अलीबहादुर को अर्थिक सहायता देने में असमर्थता व्यक्त की। अली बहादुर को तुको जी से ऐसी आशा नहीं थी। दूसरी ओर वह हिम्मत बहादुर के विवाद से ऊब चुका था, और इस विवाद का निराकारण करना चाहता था। अतः नव0 1789 ई0 में अलीबहादुर ने हिम्मत बहादुर को कहा, कि वह उसे कुछ समय के लिए कहीं और भेज देगा। जब परिस्थितियां अनुकूल हो जयगीं, तो वह दो माह के पश्चात उसको अपने पास वापस बुला लेगा। हिम्मत बहादुर ने कहीं भी जने से इन्कार कर दिया, और हाथ में कटार लेकर कहने लगा कि यदि उसे कहीं और भेजा गया तो वह स्वयं को समाप्त कर लेगा। यदि किसी ने उसके सम्मान को ठेस पहुँचाने की कोशिश की, तो वह स्वयं कटार भौंक लेगा। वास्तव में यदि आप मुझे कहीं भेजना चाहते है तो मुझे पेशवा

---

1. महाद जी सिंधिय, सं0 पत्र 561–62.

के पास पूना ही भेज दीजिए अन्यथा मुझे अपने ही पास रखिए। यदि मुझकों आप झाँसी के किले में या किसी और स्थानपर भेजगें तो में आत्म हत्या कर लूंगा। मैं महाद जी के द्वारा अपमानित नहीं होता चाहता[1]।

हिम्मत बहादुर विवाद की समाप्ति

कुछ समय के उपरान्त नाना फडनीस ने महाद जी सिंधिया को पुनः इस आशय का एक पत्र लिख, कि वह इस विवाद को शीध्र अति शीध्र समाप्त कर दे। अली बहादुर भी इस विवाद को निपटाने के लिए उत्सुक था। तुको जी ने भी, महाद जी सिंधिया पर दबाव डाल, कि वह अली बहादुर के डेरे में जाकर इस विवाद को निपटाने की कोशिश करें। यदि पेशवा ने हिम्मत बहादुर गोसांई के पास खिल्लत भेज दी तो महाद जी सिंधिया अपना मुंह दिखाने लायक नहीं रहेगा[2]। तुको जी के इस परामर्श से महाद जी सिंधिया को यह अनुभव हुआ, कि वास्तव में स्थिति बिगड सकती है। तब उसने अली बहादुर से कहा, कि यदि हिम्मत बहादुर को उसके डेरे में भेज दिया जाये, तो वह हिम्मत बहादुर को क्षमा कर देगा। इस पर हिम्मत बहादुर ने यह कहा, कि वह पेशवा या उसके स्थानीय प्रतिनिधि अली बहादुर के सम्मुख झुकने के लिए तैयार है परन्तु महाद जी सिंधिया के सामने वह कभी नहीं झुकेगा।वास्तव में हिम्मत बहादुर ने इस विवाद को अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लिया।

---

1. सरकार, जि0, 4, पृ0 11 एवं सिं0 रीजे0, पृ0 28
2. सरकार, जदुनाथ, सिंधिया एज0 रीजे0 आफ दिल्ली, पृ0 34

इसके परिणाम स्वरूप महाद जी सिंधिया को झुकना पडा[1]। 26 जन0 1790 ई0 को अली बहादुर पुनः इस विवाद के निराकरण के लिए महाद जी सिंधिया के डेरे में गया और उस पर दबाव डाला कि वह शीध्र ही इस संबंध में अपना निर्णय व्यक्त करे। अन्त में बाध्य होकर महाद जी स्वयं 6 फर0 को अली बहादुर के डेरे में गया। वहां अली बहादुर ने हिम्मत बहादुर गोसांई को महाद जी के सम्मुख प्रस्तुत किया महाद जी सिंधिया ने हिम्मत बहादुर के प्रति मैत्री भाव व्यक्त करते हुए उसे खिल्लत प्रदान की, तथा उसके अपराधों को क्षमा करके उसको एक घोड़ा और हाथी भेंट किया। गोसांई परिवार के जो लाग सिंधिया के शिविर में बंदी थें, उनको तथा हिम्मत बहादुर की सेना को भी महाद जी सिंधिया ने स्वतन्त्र कर दिया[2]।

---

1. सरकार, मुगल साम्रा0 का पतन, जि0 4 पृ0 12, एवं सिं0 पृ 34

2. महाद जी सिंधिया संबंधी एति0 पत्र सं0 570,583,586,606, सरदेसाई जि03 पृ0 312, सिंधिया रीजे0, पृ0 34,35 एवं साम्रा0 पतन जि0 4 पृ0 12

(स) हिम्मत बहादुर और बांदा के नवाब

मोहम्मद खां बंगश के 1729 ई. के बुन्देलखण्ड आक्रमण के समय छत्रसाल ने बाजीराव पेशवा (प्रथम) से सैन्य सहायता मांगी थी। इससे वह पराजित होने से बच गये और सहायता से प्रसन्न होकर बाजीराव को छत्रसाल ने अपने राज्य का तृतीय भाग तथा एक मुस्लिम नर्तकी "मस्तानी" भेंट की। सन् 1734 ई. में इस मंस्लिम कन्या मस्तानी एवं बाजीराव पेशवा से एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसाक नाम शमशेर बहादुर था। बड़ा होकर शमशेर बहादुर वीर योद्धा निकला तथा मराठा सेना में उच्च स्थान प्राप्त किया। युद्ध में घायल होने पर उसकी मृत्यु हो गयी। मृत्यु से पूर्व 1758 ईस्वी में शमशेर बहादुर को एक पुत्र प्राप्ति हुयी थी जिसका नाम अली बहादुर रखा गया।[1] युवावस्था प्राप्त करने पर अली बहादुर भी अपने पिता व प्रपिता की भांति एक कुशल सैनिक व प्रतिभा, सम्पन्न सेनानायक के रूप में प्रसिद्ध हुआ। गोरिल्ला युद्ध विधा का प्रशिक्षण प्राप्त करने के कारण इसकी सैनिक प्रतिभा और निखर आयी थी।

सन् 1787 ई. में महादजी सिंधिया की राजपूताने में हुयी पराजय से पेशवा चिन्तित हो उठा अतः उसने महादजी की मांग पर सन् 1788 ई. में मराठों की एक सेना अली बहादुर तथा तुको जी होलकर के नेतृत्व में उत्तर की ओर भेजी[2]। शाह आलम को अन्धा बनाने वाले गुलाम कादिर को पकड़ने में, अली बहादुर ने जिस

---

1. भाअिया, राजकजकुमरा "बांदा के नवाबों का इतिहास" एक लेख बुन्देलखण्ड कालेज पत्रिका, प्रो. राजकुमार भाटिया, (1984)

2. "सतारा" भाग–1, पेज–126

योग्यता का परिचय दिया उससे महादजी भी अली बहादुर के व्यक्तित्व से अत्यधिक प्रभावित हुआ। इस प्रकार पेशवा के वरद हस्त के कारण अली बहादुर की उत्तर में धाक जम गयी। अली बहादुर की इन सफलताओं एवं उसके आकर्षक व्यक्तित्व ने तुको जी एवं हिम्मत बहादुर गोसांई को उसकी ओर आकर्षित किया। धीरे–धीरे हिम्मत बहादुर उसका प्रमुख सलाहकार एवं सहायक बन गया[1]।

इस बीच महादजी सिंधिया ने अली बहादुर को रूहेलों के गौसगढ़, अलीगढ़ और सहारनपुर की जागीरें इसलिये सौंप दी कि कि उनकी व्यवस्था करें और उनकी आय से अपनी सेना का खर्च स्वतन्त्र रूप से चलायें[2]।

हिम्मत बहादुर एवं अली बहादुर का बुन्देलखण्ड अभियान

पेशवा के आदेशानुसार अली बहादुर, हिम्मत बहादुर को साथ लेकर, राजपूताने से बुन्देलखण्ड की ओर चला,। एक सितम्बर 1791 ई. को उसने अपनी चालीस हजार सेना सहित चम्बल को पार करके बुन्देलखण्ड की सीमाओं मे प्रवेश किया। उसके साथ मराठों की हुई सेना थी, जिसका नेतृत्व प्रमुख मराठा सरदार जसवंत राय नायक कर रहा था। हिम्मत बहादुर गोसांई जो कि बुन्देलखण्ड की भौगोलिक एवं आंतरिक स्थिति से पूर्णतया अवगत था, अपनी नागा सेना के साथ अली बहादुर का मार्ग दर्शन कर रहा था। उसे बुन्देलखण्ड की राजनैतिक स्थिति का सम्पूर्ण ज्ञान तथा सैनिक संचालन का पर्याप्त अनुभव था। बुन्देलखण्ड की तत्कालीन परिस्थिति

---

1. इलियास मगारबी, तबारीखे बुन्देलखंड़ पृष्ठ 183
2. हिस्ट. पेपर्स 556

अली बहादुर के अभियानों के सर्वथा उपर्युक्त थी। सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड छोटी–छोटी जागीरों में विभक्त था। ईर्ष्या, वैमनस्य, तथा द्वेष के कारण बुन्देलखण्ड की शक्ति विभाजित हो गयी थी। छत्रसाल की मृत्यु के पश्चात उसके पुत्रों ने भूमि के लिए विनाश का तांडव किया। जिस बुन्देल शक्ति ने छत्रसाल के नेतृत्व में मुगलों के दांत खट्टे करके उनको उत्ता स्थापित न करने दी थी। उन्हीं बुन्देलों की शक्ति को अली बहादुर ने रोंद डाला। सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड को अपने अधीन करते हुए अली बहादुर उनसे कर वसूल करने में सफल हो गया।

अली बहादुर 1791 ई. के अन्तिम दिनों में झांसी के मराठा राज्यों के प्रदेशों में जा पहुंचा। वहां उसने दतिया के राजा शत्रुजीत (1762–1801 ई0) से पौने तीन लाख और समथर के राजा देवी सिंह (1780–1800 ई.) से पचास हजार की खंडणी **(चौथ)** वसूल की[1]। इस शक्ति प्रदर्शन का अच्छा प्रभाव पड़ा। गंगाधर गोविन्द और शिवहरी भी अपने सैनिक दलों के साथ उससे जा मिले। ओरछा के राजा विक्रमजीत (1776–1817 ई.) से भी खंडणी वसूल की।

हिम्मत बहादुर के द्वारा अजय गढ़ पर आक्रमण

1792 ई. में सर्वप्रथम अली बहादुर की सेना ने बांदा के अव्यस्क शासक बखत सिंह पर आक्रमण किया। बख्तसिंह राजा गुमान सिंह की मृत्यु के पश्चात बांदा की गद्दी पर बैठा था। गुमान सिंह छत्रसाल बुन्देला के पुत्र जगतराज का पौत्र था। गुमान सिंह के

1. "सतारा हिस्टा." भाग–1, पेज. 308

कोई पुत्र नहीं था। अतः इन्होंने अपने संबंधी दुर्गासिंह के अल्प व्यस्क पुत्र बख्तसिंह को गोद लिया था। इस समय बख्तसिंह के राज्य की देखभाल इसका दीवान नौने अर्जुन सिंह[1] किया करता था। नौने अर्जुन सिंह पहले चरखारी के राजा खुमान सिंह की सेवा में था। आपस में विवाद हो जाने के कारण वह खुमान सिंह का साथ छोड़कर बांदा के राजा गुमानसिंह की सेवा में आ गया। इस समय बख्तसिंह नौने अर्जुन सिंह के साथ अजयगढ़[2] में रहने लगा था।

जब अर्जुन सिंह को अली बहादुर की सेना के आगमन की सूचना मिली, तो वह अपनी सैनिक तैयारी के साथ अली बहादुर का सामना करने के लिए बनगांव के मैदान में आ डटा।

18 अप्रैल 1792 ई. को अली बहादुर ने अर्जुन सिंह की सेना पर धावा बोल दिया। इस युद्ध में चरखारी के राजा विजय बहादुर (राजा खुमान सिंह का पुत्र) ने नौने अर्जुन सिंह के विरूद्ध अली बहादुर तथा हिम्मत बहादुर का साथ दिया। क्योंकि वह अपने पिता की पराजय का बदला, नौने अर्जुन सिंह से लेना चाहता था। अली बहादुर की ओर से जसवंत राय नायक, सब सुख़ राय, मनी बहादुर, हिम्मत बहादुर और उसका भाई उमराव गिरि तथा इनके पुत्रों ने भी भाग लिया। धामसान संघर्ष के पश्चात इस युद्ध में अली बहादुर विजयी हुआ तथा नौने अर्जुन सिंह युद्ध भूमि में लड़ते हुए मारा गया

---

1. फ्रेकलिन जैम्स, मेमो. आन बुन्देलखण्ड , पृ. 270 ई. पोग्सन पृ. 119, बांदा गजे. पृ. 177, पदमाकर ग्रन्था. पृ. 83

2. अजयगढ़ बांदा के 40 मील दक्षिण में स्थित है। गोरे लाल पृ. 274 के अनुसार बनगांव का मैदान बांदा और अजयगढ़ के मध्य, बांदा से 230 मील द. में हैं।

तथा उसका सिर काट कर अली बहादुर के पास भेज दिया गया। नौने अर्जुन सिंह के सैकड़ों सैनिक इस युद्ध में मारे गये तथाउसकी सारी युद्ध सामग्री पर अली बहादुर की सेना ने अधिकार कर लिया।

इस विजय के परिणाम स्वरूप बांदा तथा उसके आस–पास के क्षेत्रों पर अली बहादुर का अधिकार हो गया। यह युद्ध निर्णायक सिद्ध हुआ। इस युद्ध के पश्चात पूरे बुन्देलखण्ड में अली बहादुर तथा हिम्मत बहादुर की धाक जम गई। राजा बख्त सिंह राज्य छोड़कर भाग गया। इसके पश्चात अलीबहादुर ने नवाब की उपाधि धारण करके, बांदा में राज्य करना प्रारम्भ किया । अली बहादुर की सेना ने तेजी से आगे बढ़कर देवगांव[1] तथा गौरहा पर आक्रमण करके उसको जीत लिया।[2] कुछ समय के उपरान्त बख्तसिंह ने अली बहादुर की अधीनता स्वीकार करके उससे सनद प्राप्त की। बख्तसिंह को पराजित करने के पश्चात अली बहादुर की सेना ने भूरागढ़ के किले पर आक्रमण करके उस पर अधिकार कर लिया।

हिम्मत बहादुर एवं अली बहादुर द्वारा चरखारी पर आक्रमण

प्रथम विजय के उप रान्त अली सैनिक शक्ति को संगठित करते हुए अली बहादुर ने बुन्देलखण्ड के अन्य राज्यों पर आक्रमण करने की योजना बनाई। अपने उद्‌देश्य की प्राप्ति के लिए अली बहादुर ने

---

1. देवगांव अजयगढ़ के 10 मील उत्तर पश्चिम में स्थित है।
2. पोगसन, डब्ल्यू. आर. हि. आफ द बुन्देलाज, पृ. 119

अपनी सेना को विभिन्न टुकड़ियों में बांटकर अलग–अलग सेनापतियों के नेतृत्व में स्थानीय राजाओं का दमन करने के लिए भेजा। हिम्मत बहादुर भी अपने साथ 4 बड़ी तोपें, एक हजार सवार और पैदल सेना की एक टुकड़ी लेकर चरखारी[1] पर आक्रमण करने के लिए आगे बढ़ा।

यह उल्लेखनीय है कि चरखारी के राजा विजय बहादुर ने (विक्रमाजीत) ने बनगांव के युद्ध में अली बहादुर का साथ दिया था।[2] लेकिन हिम्मत बहादुर की महत्वाकांक्षा तथा राज्य लिप्सा की भावना के कारण उसने हिम्मत बहादुर के विरूद्ध विद्रोह कर दिया।अतः इस व्रिदोह का दमन करने के लिए हिम्मत बहादुर ने 1793 ई. में चरखारी का घेरा डाला। हिम्मत बहादुर की रणनीति तथा व्यूह रचना के परिणाम स्वरूप एक ही दिन में इस युद्ध का निर्णय उसके पक्ष में हो गया। सूर्यास्त से पूर्व भयंकर प्रहार करके हिम्मत बहादुर ने युद्ध को जीत लिया। बीर सिंह दिवान अपने तीन सौ सैनिकों सहित इस युद्ध में लड़ते हुए मारा गया। उसका सिर काटकर हिम्मत बहादुर ने अली बहादुर के पास भेज दिया। इस प्रकार चरखारी तथा बिजावर दोनों राज्यों पर अली बहादुर का अधिकार हो गया।

---

1. चरखारी, झांसी मानिकपुर रेल्वे लाइन पर महोबा स्टेशन से 13 मील उत्तर पश्चिम में स्थित है।

2. गोरेलाल तिवारी, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, पृ. 273

MARATHA POSSESSIONS IN BUNDELKHAND
Scale 1" = 40 Miles
0
20
40
60
80
RIVER CHAMBAL
GWALIOR
BHOGNIPUR
RIVER GANGA
JALAUN
KALPI
HAMIRPUR
RIVER JAMUNA
RIVER SINDH
DATIA
NARWAR
SHIVPURI
BETWA
ERACH
RATH
JHANSI
ORCHHA
KATERA
BANDA
ALLAHABAD
MAHOBA
CHITRAKUT
MAURNIPUR
MAHEWA
KALINJAR
JATARA
KALABAGH
PNNA
RIVER KEN
DHASAN
LALIT PUR
CHANDERI
RIVER TONS
REWA
DHAMONI
SIRONJ
BETWA
SAGAR
DAMOH
GARHABOTHA
BHILSA
BHOPAL
Prants of Sagar, Jhansi & Jalaun
Region over run py Ali Bahadur & Himmat Bahadur

वरौंधा पर आक्रमण

1792–93 ई. में अली बहादुर ने, कर्नल जौन मिसिल बैक[1] को एक सेना लेकर वरौंध पर आक्रमण करने के लिए भेजा। मिसिल बैंकि ने अपने तोपखाने के सहयोग से वरौधा[2] पर आक्रमण करके इसको जीत लिया। इस समय यहां का राजा मोहन सिंह था। लम्बे संघर्ष के पश्चात मोहन सिंह ने 1796 ई. में अली बहादुर की अधीनता स्वीकार करके वरौंधा राज्य सनद प्राप्त की। इस प्रकार एक वर्ष के अल्पकाल में ही अली बहादुर ने बांदा चरखारी, बिजावर, जैतपुर, भूरागढ़, कुलपहाड़[3] तथा वरौंधा पर अधिकार कर लिया।

मौदहा का युद्ध

निरन्तर प्राप्त होने वाली सफलताओं ने अली बहादुर को और भी उत्साहित किया। अतः एक दूसरी सेना अली बहादुर ने सखाराम के नेतृत्व में पूरनमल के विरूद्ध भेजी। पूरनमल चरखारी के राजा विक्रमाजीत का दूसरा पुत्र था। इसने अभी तक अली बहादुर की अधीनता स्वीकार नहीं की थी। सखाराम ने मौदहा के पास मोर्चा जमा दिया। दूसरी ओर पूरनमल को भी स्थानीय बुन्देला सरदारों से सैनिक सहायता प्राप्त हो गई। अतः उसने सखाराम के विरूद्ध

---

1. कर्नल जौन मिसिल बैक डेनमार्क का निवासी था 118 वर्ष तक यह हिम्मत बहादुर गोसांई की सेना में तोपखाने के अध्यक्ष के रूप में कार्य करता रहा। विस्तृत विवरण संलग्न परिशिष्ट संख्या (स) पर है।

2. वरौधा, मानिकपुर सतना रेल्वे लाइन पर मजगांव स्टेशन के 16 मील पश्चिम में स्थित है। इसके पूर्व में पशैनी नदी तथा कोठी की रियासत है, पश्चिम में कालिंजर का किला उत्तर में चित्रकूट तथा दक्षिण में पन्ना राज्य की सीमायें है।

3. कुलपहाड़ महोबा के 14 मील पश्चिम तथा हमीपुर से 60 मील दूर स्थित है। हमीरपुर गजे. पृ. 190

जमकर मोर्चा लिया। छतरपुर के सोनेशाह तथा जीवन आनन्द ने भी अपनी–अपनी सेनाओं के साथ पूरनमल की ओर से सखाराम के विरूद्ध इस युद्ध में भाग लिया। इस प्रकार बुन्देलों ने संगठित होकर मराठों की सत्ता के विरोध का असफल प्रायास किया। प्रातः होते हुए दोनों ओर की सेनाओं में भयंकर युद्ध शुद्ध हो गया। भीषण नरसंहार के पश्चात इस युद्ध का निर्णय सखाराम के पक्ष में हुआ। मौदहा पर अलीबहादुर की सेना ने अधिकार कर लिया। भयंकर गोलाबारी के कारण मौदहा का किला बुरी तरह से नष्ट हो गया। बाद में अली बहादुर ने सुरक्षा की दृष्टि से मौदहा में नये किले का निर्माण भी कराया था।

दुर्गागिरि एवं गम्भीर सिंह के मध्य मूरवल का युद्ध

अली बहादुर ने कुंवर दुर्गागिरि[1] के नेतृत्व में अपनी सेना की एक अन्य टुकड़ी गम्भीर सिंह के विरूद्ध भेजी। गम्भीर सिंह एक स्थानीय जागीरदार था। उसने उपद्रवों तथा लूटपाट से अपनी सैनिक शक्ति में पर्याप्त वृद्धि करके अलीबहादुर के लिए समस्या खड़ी करदी। इसका दमन करने के लिए दुर्गागिरि मूरवल[2] की ओर बढ़ा। दुर्गागिरि की सेना में इस समय चार तोपें, तीन सौ पैदल, तथा दो सौ सवार थे। इस सेना ने मूरवल के पास रनगढ़ में गम्भीर सिंह के ऊपर आक्रमण कर दिया। गम्भीर सिंह को लगभग एक हजार ग्रामीणों के अतिरिक्त आस–पास के बुन्देला जागीरदारों और जमीदारों की सैनिक सहायता भी प्राप्त हो गई थी। इस युद्ध में गम्भीर सिंह की

---

1. कुंवर दुर्गागिरि, राजा हिम्मत बहादुर गोसांई(अनूप गिरि) का पुत्र तथा उसकी नागा सेना का सेनापति था।

2. मूरवल बांदा के 12 मील उत्तर पूर्व में बबेरू तहसील का परगना है।

हार हो गई, वह मैदान छोड़कर भाग गया। दुर्गागिरि इस युद्ध के पश्चात निश्चित सा हो गया था। वह यह समझ रहा था, कि अब बुन्देले उसके विरूद्ध पुनः संगठित नहीं होंगे। परन्तु उसका विचार गलत निकला।

शीघ्र ही कुछ जागीरदारों ने दुर्गागिरि की सेना को रोकने के लिए जमुना के किनारे बैंदा[1] तथा जौहरपुर में अपनी-अपनी सेनाओं के साथ पुनः मोर्चा जमा दिया। आस-पास के क्षेत्रों में लूटपाट करने के पश्चात इन्होंने दुर्गागिरि के शिविर पर रात्रि में अचानक उस समय धावा बोल दिया, जबकि वह गम्भीर सिंह को पराजित करने के पश्चात निश्चित सा हो गया था। इस अचानक हुए हमले से दुर्गागिरि की सेना में उथल-पुथल मच गई। फिर भी उसने साहस नहीं छोड़ा। पुनः अपनी सेना को संगठित करके दुर्गागिरि ने पलट कर धावा बोल दिया। लगातार कई घंटों की गोलाबारी के परिणामस्वरूप बुन्देलों के पैर उखड़ गये तथा वह मूरवल के बीहड़ों (जमुना) में जा छिपे।

दूसरे दिन पुनः इन्होंने दुर्गागिरि पर आक्रमण कर दिया। पहले से ही सतर्क रहते हुए दुर्गागिरि ने इस आक्रमण को निश्फल करके बुन्देलों को जमुना की ओर ढकेल दिया। यहां तक, कि जमुना के बीहड़ों में भी दुर्गागिरि ने इनका पीछा नहीं छोड़ा, गम्भीर सिंह दुर्गागिरि के आक्रमण का सामना न कर सका और जमुना पार करके फतेहपुर की सीमा में चला गया। गम्भीर सिंह के भाग जाने से बुन्देलों की शक्ति बिखर गई तथा वे शीघ्र ही पुनः' संगठित न हो सके।

---

1. बैंदा, बांदा के 23 मील उत्तर पूर्व में स्थित है।

छिबून का युद्ध

दक्षिणी पूर्वी बुन्देलखण्ड में मराठों की शक्ति को पुनः स्थापित करने के लिए अलीबहादुर ने इस प्रदेश पर आक्रमण करने की योजना बनाई। जहां एक ओर अलीबहादुर अपनी स्थिति को मजबूत बनाने के लिए दृढ़ निश्चय कर चुका था। वहां दूसरी ओर बुन्देल राजा मराठा शक्ति को उखाड़ फेंकने के लिए सतत् प्रयास कर रहे थे। यद्यपि बुन्देलों के पास सीमित शक्ति थी, लेकिन वे इससे हताश नहीं थे। इसी क्रम में कोठी[1] रियासत के राजा देवपत बुन्देला ने अपनी सैनिक शक्ति को संगठित करके दक्षिणी बुन्देलखण्ड में अली बहादुर के सैनिक प्रसार को रोकने का निष्फल प्रयास किया।

अलीबहादुर स्वंय अपने साथ मराठों की एक शक्तिशाली सेना लेकर देवपत बुन्देला का दमन करने के लिए दक्षिण की ओर बढ़ा। दोनों ओर की सेनाओं के मध्य मऊ तहसील के परगना छिबून[2] में युद्ध शुरू हुआ। मराठों की अनुभवी सेना के सामने बुन्देलों की सेना अधिक समय तक न टिक सकी। अलीबहादुर के द्वारा की गई भीषण गोलाबारी के कारण बुन्देलों के पैर उखड़ गये। अन्ततः इस युद्ध में अलीबहादुर को विजय प्राप्त हुई

दुर्गाताल का युद्ध

दक्षिण में साम्राज्य प्रसार के लिए पन्ना को अपने अधिकार करने के लिए अली बहादुर ने इसपर आक्रमण करने की योजना

---

1. कोठी, द. बुन्देलखण्ड में सतना के 14 मील उ. में स्थित है।

2. छिबून, बांदा के 50 मील द.पू., कर्बी के 18 मी. पू. एवं मऊ से 10 मील प. में स्थित है।

बनाई। पन्ना इस समय धौकल सिंह का राज्य था। धौकल सिंह ने अली बहादुर के दक्षिण प्रसार रोकने के लिए बुन्देलों की शक्ति को संगठित करके उसके विरोध का निश्चय किया। धौकल सिंह का दमन करने के लिए अलीबहादुर ने स्वयं एक शक्तिशाली सेना लेकर 1796 ई. में पन्ना के विरूद्ध कूच किया। करवी के 3 मील पश्चिम की ओर दुर्गाताल नामक स्थान पर उसका युद्ध पन्ना की सेना के साथ हुआ।

पन्ना की सेना का नेतृत्व, दीवान बैनी हजूरी का पुत्र राजधर हजूरी कर रहा था। स्थानीय जागीदार नैन सिंह बुन्देला भी अपनी सेना सहित राजधर हजूरी के साथ। इस युद्ध में अली बहादुर के तोपखाने ने भयंकर गोलाबारी की। जिसके परिणाम स्वरूप नैनसिंह के हाथी को एक गोला लगा, और वह मर गया। उस सजे हुए कीमती सामान को अली बहादुर की सेना ने लूट लिया[1]। रक्तरंजित युद्ध के पश्चात अली बहादुर की विजय हुई, दोनों ओर के सैकड़ों सैनिक इय सुद्ध में हताहत हुये।

इस प्रकार छत्रसाल के उत्तराधिकरियों ने एक–एक करके मराठा शक्ति के सामने घुटने टेक दिये। अली बहादुर ने बुन्देलखण्ड के अन्य राजाओं की तरह धौकल सिंह को पन्ना राज्य की सनद प्रदान करके अपनी अधीन कर लिया। 1798 ई. में धौकल सिंह की मृत्यु के पश्चात पन्ना के राज्य को अलीबहादुर ने अपने राज्य में

---

1. पोगसन, पृ. 120, गोरेलाल तिवारी, पृ.–276

मिला लिया। धौकल सिंह के पुत्र, किशोर सिंह को अलीबहादुर ने पन्ना के उत्तराधिकार से वंचित कर दिया[1]।

अलीबहादुर द्वारा रीवा का अभियान

बुन्देलखण्ड के अधिकांश भाग पर अधिकार करने के पश्चात अली बहादुर ने हिम्मत बहादुर गोसांई के सहयोग से अपने राज्य का और अधिक विस्तार करने के लिए 1795 ई. में बधैल राज्य रीवा पर आक्रमण करने का निश्चय किया।[2]

अली बहादुर ने महाराज सिंह बधैल के सहयोग से रीवा पर आक्रमण करने का निश्चय किया। अली बहादुर ने अपनी एक संगठित सेना मराठा सरदार जसवंत राय नायक के नेतृत्व में रीवा पर आक्रमण करने के लिए भेजी। इसके अधीन दस हजार सैनिक तथा एक भारी तोपखाना था[3]। इसके अतिरिक्त इसे बुन्देलों और बधैलों की सहायता भी प्राप्त थी। जसवंत राजय ने अपनी सेना के साथ रीवा के 3 मील उत्तर में स्थित धोधर नदी के किनारे परगना चोरहाट में पड़ाव किया।

बुन्देलों ने अली बहादुर के विरूद्ध विद्रोह कर दिया सारे राज्य में उपद्रव, अराजकता, तथा अशांति का साम्राज्य व्याप्त हो गया। जो बुन्देला सरदार अली बहादुर की शक्ति से दबे हुए थे, वे अब पुनः स्वतन्त्र होने के लिए विद्रोह करने लगे। अजयगढ़, जैतपुर तथा अन्य

---

1. गोरे लाल तिवारी, बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, पृ.–276
2. मगरबी, सैयद इलियास मुहम्मद, तारीख–ए– बुन्देलखण्ड (उर्दू) पृ.–90
3. पोगसन, डब्ल्यू.आर. हि.आफ. द. बुन्देलाज, पृ. 121

राज्यों में लूटपाट तथा हत्याओं का क्रम तीव्र हो गया । इस तनावपूर्ण स्थिति में अलीबहादुर को ऐसा प्रतीत हो रहा था, जैसे कि सम्पूर्ण साम्राज्य उसके हाथ से निकल जायेगा। ऐसे कठित समय में अली बहादुर ने साहस से काम लेते हुए अपनी सैनिक शक्ति को पुनः संगठित करना शुरू किया। साथ ही साथ उसने एक पत्र पेशवा के पास लिख भेजा तथा उससे सैनिक सहायता की मांग की।

हिम्मत बहादुर गोसांई की पैंतरेबाजी

हिम्मत बहादुर तथा कर्नल मिसिल बैंक ने अपनी समस्त शक्ति के साथ प्रत्यतः अली बहादुर को सहायता का आश्वासन दिया। परन्तु वास्तव में हिम्मत बहादुर अली बहादुर के प्रति आस्था नहीं रखता था। वह तो अलीबहादुर से स्वतन्त्र होकर बुन्देलखण्ड में अपने के लिए एक राज्य का निर्माण कराना चाहता था। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए पहले उसने सिंधिया के विरूद्ध अलीबहादुर को मुहरा बनाकर, बुन्देलखण्ड पर आक्रमण किया था। उस समय यह समझता था, कि अलीबहादुर उसे बुन्देलखण्ड का राज्य सौंप कर, पूना वापिस चला जायेगा। परन्तु जब अलीबहादुर बांदा में ही जम गया तो उसे असुविधा होने लगी। यह अवसर उसे उचित प्रतीत हुआ, जबकि वह अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त सकता था। अतः उसने इस अवसर का लाभ उठाकर अन्दर ही अन्दर बुन्देलों को अली बहादुर के विरूद्ध उकसाने की हर सम्भव कोशिश की। अलीबहादुर के प्रति उसके द्वारा दर्शाई गई सहानुभूति वास्तव में धोखा थी क्योंकि वह अवसरवादी था, राज्य लिप्सा की भावना से ग्रस्त था, विश्वासधात उसकी प्रवृत्ति थी। इसलिए उसने अपनी महत्वाकांक्षा

की पूर्ति के लिए बुन्देलों को भड़काने की कोशिश की। कुछ समय के पश्चात जब उसने देखा, कि पूना से सैनिक सहायता भेजी जा रही है, तो वह सोच में पड़ गया। उसे यह भी आभास हो गया कि बुन्देले, एकता के अभाव में अपने राज्य को स्वतन्त्र नहीं करा पायेंगे। अतः उसने अपना निर्णय कुछ समय के लिए स्थगित कर दिया।

अलीबहादुर द्वारा जैतपुर का दमन

1792 ई. में अलीबहादुर के प्रथम आक्रमण के समय जैतपुर पर गजसिंह का राज्य था। अलीबहादुर ने गजसिंह को पराजित करके, जैतपुर का राज्य पुनः उसे सौप दिया था। गजसिंह ने भी युद्ध में पराजित हो जाने के पश्चात अलीबहादुर की अधीनता स्वीकार करते हुए उससे जैतपुर राज्य की सनद प्राप्त करके उसे वार्षिक कर देना स्वीकार कर लिया था। अन्यान्य बुन्देला राजाओं की तरह गजसिंह भी मराठों की आधीनता से प्रसन्न नहीं था। जब गजसिंह को रीवा की पराज का समाचार मिला, तो उसकी सुप्त भावना जाग्रत हो उठी। अपने राज्य को स्वतन्त्र कराने के लिए उसने 1796 ई. में अलीबहादुर के विरूद्ध विद्रोह कर दिया। इस विद्रोह में उसे सरीला[1] के शासक तेजसिंह का भी समर्थन प्राप्त हो गया। तेजसिंह पहले से ही अलीबहादुर की सत्ता का विरोध करता चला आ रहा था। जुलाई 1795 ई. में उसने अलीबहादुर के विरूद्ध अंग्रेज सेनापति कर्नल फोरबस के पास सैनिक सहायता प्रापत करने के लिए अपने वकील छोटेलाल को भेजा। कर्नल फोरबस ने इस आशय की सूचना गर्वनर

1. सरीला झांसी मानिकपुर रेलवे लाइन पर महोबा से 33 मील उत्तर तथा चरखारी के 20 मील उत्तर में स्थित है।

जनरल को भेजते हुए उस्से बुन्देलखण्ड में हस्तक्षेप करने की अनुमति मांगी थी। सम्भवतः अंग्रेजों के संबंध पूना से अच्छे बन चुके थे, तथा राधोवा की समस्या के समाप्त हो जाने से तनाव में शिथिलता आ चुकी थी। अतः गनर्वनर जनरल ने कर्नल फोरबस को अलीबहादुर के विरूद्ध सैनिक सहायता भेजने से मना कर दिया।

अंग्रेजी सहायता के न मिलने के बावजूद भी तेजसिंह ने अलीबहादुर के विरोध की नीति को जारी रखा। परिणामस्वरूप अलीबहादुर ने सरीला के दमन के लिए अपनी सेना भेजी। थोड़े से संघर्ष के पश्चात अलीबहादुर ने सरीला को जीत कर अपने राज्य में मिला लिया और तेज सिंह को उसके राज्य में वंचित कर दिया। सरीला के विलीनीकरण से तेजसिंह अलीबहादुर के प्रति वैमनस्य रखता था। इस अवसर का लाभ उठाकर उसने भी गजसिंह के साथ अलीबहादुर के विरूद्ध विद्रोह कर दिया। इस सम्मिलित विद्रोह का दमन करने के लिए अलीबहादुर ने अपनी सेना सहित गजसिंह और तेजसिंह पर आक्रमण करके दोनों को पराजित कर दिया। जैतपुर और सरीला को अलीबहादुर ने अपने अधिकार में कर लिया[1]।

अजयगढ़ पर अधिकार

जैतपुर का दमन करने के पश्चात अलीबहादुर ने लक्ष्मनसिंह दउआ के विद्रोह का दमन करने के लिए एक सेना कर्नल मिसिल बैक के नेतृत्व में अजयगढ़ की ओर भेजी। लक्ष्मन सिह दउआ ने भी रीवा

---

1. बांदा गजे., पृ. 177, पोग्सन, पृ. 121, गोरेलाल तिवारी, पृ. 277

में हुई पराजय का लाभ उठाते हुए अलीबहादुर के विरूद्ध विद्रोह करके अजयगढ़ के किले पर अधिकार कर लिया था। इस विद्रोह में उसे स्थानीय जमींदारों जागीदारों और अन्य बुन्देला सरदारों का भी सहयोग प्राप्त हो गया था, जिससे उसकी सैनिक शक्ति में पर्याप्त वृद्धि हो गई थी। परिणामस्वरूप उसने लूटपाट तथा हत्याऐं करके राज्य में अशांति तथा अराजकता की स्थिति उत्पन्न कर दी। अलीबहादुर इस समय कई अन्य विद्रोहों का दमन करने में व्यस्त था, अतः वह तुरन्त लक्ष्मनसिंह के विरूद्ध अभियान न कर सका। अन्य प्रदेशों में सफलताऐं प्रापत करने के पश्चात उसने अजयगढ़ पर आक्रमण किया। इसका एक मुख कारण यह भी था, कि अजयगढ़ का दुर्ग एक सुदृढ़तम दुर्ग था, और आसानी से इस पर अधिकार करना सम्भव नहीं था।

अलीबहादुर के आदेशानुसार कर्नल मिसिल बैक अपने साथ एक बड़ी सेना तथा भारी तोपखाना लेकर अजयगढ़ की ओर बढ़ा। आस–पास के क्षेत्राों को जीतने के पश्चात उसने अजयगढ़ के किले का घेरा डाल दिया, जिसमें कि लक्ष्मनसिंह ने शरण ले रखी थी। छैः सप्ताह तक यह घेरा चलता रहा।[1] कर्नल मिसिल बैक ने इस बीच पूरी कोशिश की कि लक्ष्मनसिंह समर्पण कर दें। जब मिसिल बैंक को अपने प्रयास में सफलता न मिली तो उसने गोलाबारी और तेज कर दी। इस गोलाबारी के परिणामस्वरूप लक्ष्मनसिंह दउआ की स्थिति दयनीय हो गई।

शीघ्र ही उसे यह भी आभास हो गया, कि अब उसकी मुक्ति

---

1. पोग्सन, डब्ल्यू.आर. हिस्ट्री आफ बुन्देलाज, पृ. 121 एवं 135

असम्भव है। अतः इसने किले की सुरक्षा को देखते हुए, कर्नल मिसिल बैक के पास यह प्रस्ताव भेजा, कि यदि कर्नल किले पर गोलाबारी रोक दें तो वह आत्मसमर्पण करने के लिए तैयार है। इस पर कर्नल ने गोलाबारी रोक दी। तब लक्ष्मनसिंह ने आत्मसमर्पण कर दिया।

शीघ्र ही दोनों पक्षों में परस्पर संधि की शर्ते तय हो गई। लक्ष्मनसिंह ने भविष्य में पुनः विद्रोह न करने का आश्वासन दिया। मिसिल बैक ने अजयगढ़ पर अधिकार करने के पश्चात लक्ष्मनसिंह सहित कालिंजर की ओर प्रस्थान किया। क्योंकि अली बहादुर इस समय कालिंजर के अभियान में व्यस्त था। वहां जाकर लक्ष्मन सिंह ने अली बहादुर के सम्मुख आत्म समर्पण करके उसकी अधीनता स्वीकार करते हुए अली बहादुर को कर देना स्वीकार कर लिया। अजयगढ़ का किला अलीबहादुर ने लालशा को सौंप दिया।[1] जैतपुर, सरीला तथा अजयगढ़ की पराजय से बुन्देलों के विरोध की शक्ति का अन्त हो गया। इस प्रकार लगभग तीन वर्ष तक अली बहादुर स्थिति को सामान्य बनाने के लिए संघर्ष करता रहा। इन विद्रोहें का सबसे मुख्य परिणाम यह हुआ, कि अली बहादुर शीघ्र ही रीवा पर पुनः आक्रमण न कर सके।

कालिंजर आक्रमण

रीवा से घेरा उठाने के पश्चात अलीबहादुर ने अपनी सेना के साथ सीधे कालिंजर की ओर प्रस्थान किया। कालिंजर का किला मध्य भारत के सुदृढ़तम दुर्गो में एक माना जाता है।

1. पोग्सन, पृ. 135, बांदा गजे. पृ. 177, गोरे लाल तिवारी, पृ. 277

अलीबहादुर ने जिस समय कालिंजर के किले घेरा डाला उस समय उसे हिम्मत बहादुर, गनी बहादुर, कर्नल मिसिल बैक, कुंवर कंचन गिरि एवं दुर्गागिरि के अतिरिक्त अन्य बहुत से बुन्देला और बधेल राजाओं की भी सैनिक सहायता प्राप्त थी। काफी सतय तक घेरा पड़ा रहने के पश्चात भी जब अली बहादुर को कोई सफलता नहीं मिली तो उसने अस्थाई तौर पर, उस समय तक कालिंजर में रहने का निश्चय किया जब तक की कालिंजर का किला जीता नहीं जाता। दूसरी ओर चौबों ने भी बड़े साहय के साथ अली बहादुर का प्रतिरोध किया। कुछ समय के उपरान्त कालिंजर के मुख्य नगर पर तो अली बहादुर का अधिकार हो गया, लेकिन किले को जीतने में वह फिर भी असफल रहा।

नवाब अली बहादुर की मृत्यु

इसी बीच अली बहादुर बीमार पड़ गया। काफी उपचार के पश्चात भी उसकी बीमारी ठीक न हो सकी। अन्ततः 44 वर्ष की अल्प आयु में ही नवाब अली बहादुर का कालिंजर में 28 अगस्त 1802 ई. को देहान्त हो गया[1]। इस प्रकार कालिंजर को अपने अधिकार में करने का उसका स्वप्न अधूरा ही रह गया। अली बहादुर का शव सम्मान सहित बांदा लाकर शाही कब्रिस्तान में दफन कर दिया गया। बाद में उसके पुत्र शमशेर बहादुर ने अपने पिता की स्मृति में वहां पर एक मकबरे का निर्माण करवाया[2]।

---

1. सरकार, जि. 4, पृ. 12, एवं सरदेसाई, जि. 3,पृ.215

2. मगरबी, पृ. 92–93, नवाब अली बहादुर की कब्र बांदा में आज भी शाही कब्रिस्तान, मुहल्ला कोलन गंज में शाही इमामबाड़े के नाम से प्रसिद्ध है।

शमशेर बहादुर एवं उत्तराधिकार संबधी का षड़यंत्र

नवाब अली बहादुर की मृत्यु के समय इसका बड़ा पुत्र शमशेर बहादुर पूना में था। शमशेर बहादुर की आयु लगभग इस समय 18 वर्ष की थी[1]। इसकी अनुपस्थिति में अली बहादुर के साले मनी बहादुर ने उसके छोटे पुत्र जुल्फिकार बहादुर को बांदा की गद्दी का उत्तराधिकारी घोषित कर दिया। जुल्फिकार अली का जन्म 1800 ई. में अली बहादुर की दूसरी बेगम के गर्भ से कालिंजर में उस समय हुआ था, जबकि अली बहादुर ने अस्थाई रूप से अपना निवास कालिंजर में ही बना लिया था। शाही परम्परा तथा मुस्लिम रीति रिवाजों के अनुसार अली बहादुर की मृत्यु के तुरन्त बाद उसके उत्तराधिकारी की घोषणा होना अति आवश्यक थी इसलिए मनी बहादुर ने इस परिस्थिति का लाभ उठाकर अली बहादुर के छोटे पुत्र जुल्फिकार अली को बांदा का नवाब घोषित कर दिया और स्वयं अल्प व्यस्क का सलाहकार और मुख्तार बन गया[2]। इस प्रकार अप्रत्यक्ष रूप से मनी बहादुर ने सत्ता को अपने नियन्त्रण में कर लिया।

शमशेर बहादुर द्वारा गनी बहादुर की गिरफ्तारी

जैसे ही शमशेर बहादुर को पूना में अपने पिता नवाब अली बहादुर की मृत्यु का समाचार प्रापत हुआ, वैसे ही उसने तुरन्त पेशवा अमृत राव से अनुमति एवं सैनिक सहायता प्राप्त करके कालिंजर की

---

1. पोग्सन, डब्ल्यू. आर.हिस्ट्री आफ द बुन्देलाज, पृ. 123, बांदा गजे. पृ. 177, मिल जैम्स जि. 6, पृ. 374, गोरे लाल तिवारी, पृ. 278

2. एचीजन, सी.यू. जि. 2,पृ.187, पोग्सन, पृ. 123, गोरे लाल तिवारी पृ. 278

ओर प्रस्थान किया[1]। 1803 ई. में वह मराठा सेना के साथ कालिंजर आ पहुंचा[2]। पेशवा ने शमशेर बहादुर का इसलिए भी समर्थन किया, क्योंकि मनी बहादुर ने स्वयं को स्वतन्त्र घोषित करके मराठा सत्ता पर नियंत्रण कर लिया था।

पेशवा किसी भी स्थिति में बुन्देलखण्ड को मराठों के अधीन बनाये रखना चाहता था। इसलिए उसने शमशेर बहादुर के साथ मराठा सेना भेजी थी। शमशेर बहादुर ने कालिंजर में आने के पश्चात सर्व प्रथम शाही सेना को अपने नियंत्रण में करके अपने मामा मनी बहादुर को षड़यंत्र के आरोप में बन्दी बना कर अजयगढ़ के किले में मनी बहादुर को भोजन के साथ साथ विष दिया जाता रहा। जिसके कारण कुछ समय के उपरान्त अजयगढ़ के किले में ही उसकी मृत्यु हो गई[3]।

हिम्मत बहादुर का कालिंजर से भागना

शमशेर बहादुर के आगमन एवं गनी बहादुर के बंदी बनाये जाने का समाचार पाकर हिम्मत बहादुर चोकन्ना हो उठा। उसे शीघ्र ही यह आभास हो गया कि अब शमशेर बहादुर उसको भी बंदी बनाने का प्रयास करेगा। इस से पूर्व के शमशेर बहादुर उसे प्रहार करके उसे बंदी बनाये, हिम्मत बहादर ने अपनी सेना सहित कालिंजर से भाग कर दुर्गाताल में पड़ाव किया। हिम्मत बहादुर बहुत ही दूरदर्शी

---

1. पोग्सन, डब्ल्यू. आर. हिस्ट्री आफ द बुन्देलाज पृ. 123, मगरबी, पृ. 95–96
2. एचीजन, सी.यू., ए कलैक्शन आफ ट्री. एन्गे. एण्ड सनद जि. 2, पृ. 187
3. पोग्सन, पृ. 123, बांदा गजे. पृ. 177, गोरे लाल तिवारी, पृ. 279

था। अतः उसने अपनी सुरक्षा के लिए अंग्रेजों के साथ मैत्री संबंध स्थापित करने तथा सैनिक सहायता प्राप्त करने के उद्देश्य से अपने सहयोगी कर्नल मिसिक बैक और बजी उद्दीन खान को अपने पुत्र कंचन गिरि के साथ इलाहाबाद भेजा।

शमशेर बहादुर का बांदा पर अधिकार

जब शमशेर बहादुर को हिम्मत बहादुर के भागने का समाचार मिला तो उसने भी कालिंजर अभियान को अधूरा छोड़कर, अपनी सेना सहित कालिंजर से घेरा उठाकर बांदा की ओर प्रस्थान किया। भविष्य से अनभिज्ञ शमशेर बहादुर मराठा सेना के सहयोग से 1803 ई. में बांदा को अपने अधिकार में करने में सफल तो हो गया, लेकिन एक वर्ष के शासन के उपरानत ही उसकी नवाबी का दुर्भाग्य पूर्ण अंत हो गया। अंग्रेज जो लगभग पिछली अर्द्ध शताब्दी से बुन्देलखण्ड को अपने अधीन करने के लिए ललायित थे। अंततः अपने उद्देश्य में सफल हो गये। इस प्रकार हिम्मत बहादुर के बांदा के नवाबों से संबंध अलीबहादुर के बाद लगभग समाप्त हो गये।

(द) हिम्मत बहादुर गोसांई तथा अंग्रेजों के संबंध

नवाब शमशेर बहादुर के उत्तराधिकार का प्रश्न अभी हल भी नहीं हो पाया था, कि उसके सम्मुख कई अन्य समस्याऐं उत्पन्न हो गई। सबसे प्रमुख समस्या हिम्मत बहादुर गोसांई की थी। यह गोसांई नेता अत्यन्त ही अवसरवादी तथा महत्वाकांक्षी था। बुन्देलखण्ड में अपना राज्य स्थापित करने के उद्देश्य से इसने पहले तो सिंधिया के विरूद्ध अली बहादुर को भड़काया, तत्पश्चात उसने अली बहादुर को बुन्देलखण्ड पर आक्रमण करने के लिए प्रेरित किया। 1802 ई. में अली बहादुर की मृत्यु के साथ ही हिम्मत बहादुर ने पैंतरा बदला। गनी बहादुर के साथ मिलकर इसने जुल्फिकार अली को बांदा का नवाब घोषित करा दिया।[1] यह भलीभांति जानते हुए, कि अव्यस्क जुल्फिकार अली शासन करने में अक्षम है हिम्मत बहादुर ने गनी बहादुर के द्वारा प्रस्तावित योजना को स्वीकृति प्रदान कर दी।

बेसीन की संधि और अग्रेजों का प्रवेश

पेशवा के पद को लेकर मराठा सरदारों के मध्य हुई फूट के परिणाम स्वरूप पेशवा बाजीराव द्वितीय को जसवन्त राव होल्कर[2] के झकझोर डाला। जिसके विरूद्ध पेशवा ने अंग्रेजों से सैनिक सहायता प्राप्त की। इस सहायता के प्रति उत्तर स्वरूप पेशवा ने अंग्रेजों के साथ 31 दिसम्बर 1802 ई. को बेसीन[3] की संधि करली। इस संधि की

1. एचीजन, जि. 2, भाग4 पृष्ठ 187, फ्रेकलिन, जेम्स; मेमायर ऑफ बुन्देलखंड़ पृष्ठ 271, पोग्सन, पृष्ठ 123
2. सरदेसाई, जी.एस., मराठों का इतिहास, जि.3 पृष्ठ 375, जसवन्त राव होल्कर तुकोजी होल्कर का अबैध पुत्र था। दौलत राव सिंधिया के द्वारा तुको जी होल्कर के पुत्र मल्हार राव की हुई दुर्दशा से जसवन्त राव उग्र हो उठा था।
3. बेसीन बम्बई के 28 मील उत्तर पश्चिम में स्थित है। इम्पी. गजे., जि.1 पृष्ठ 368, 1821 ई. मार्च 1803 को बेसनी की संधि को पुनः परिवर्तित करके अंग्रेजों ने अन्यान्य सुविधायें भी प्राप्त कर ली थी। सरदेसाई जि.3 पृष्ठ 399–400, गजे. पृ. 177, जेम्स, बर्गेस पृष्ठ 282

पूरक संधि की एक धारा के अनुसार पेशवा ने यह भी स्वीकार कर लिया था, कि बुन्देलखण्ड का वह समस्त क्षेत्र जोकि मराठा सरदारों के अधिकार में था। उस पर अब अंग्रेजों का अधिकार होगा।[1] इस आधार पर बुन्देलखण्ड पर अंग्रेजी आधिपत्य स्थापित करने के लिए लार्ड वेलेजली ने एक सैनिक टुकड़ी कर्नल पाबेल के नेतृत्व में इलाहाबाद भेजी[2]।

बेसीन की संधि के द्वारा मराठा राज्य की शक्ति को बांध दिया गया। वासतव में इस संधि से अंग्रेजों को सबसे बड़ा लाभ यह हुआ, कि उनका प्रभाव क्षेत्र उत्तर की ओर बढ़ गया।

मराठा मंडल का निर्माण

बेसीन की संधि से असंतुष्ट मराठा सरदारों ने अंग्रेजों के विरूद्ध 1803 में ही एक मराठा मण्डल की स्थापना कर ली थी। इस मण्डल का उद्‌देश्य उत्तर तथा दोआब के प्रदेशों में अंग्रेजी सत्ता एवं शक्म्ति के प्रसार को रोकना तथा बेसीन की संधि से प्राप्त लाभों से अंग्रेजों को वंचित करना था। इस मराठा मण्डल में दौलत राव सिंधिया, बरार का राजा, नागपुर के भौसले तथा अन्य प्रभावशाली मराठा सरदार भी थे। होल्कर इस मण्डल का सदस्य नहीं बना[3]। पेशवा के आदेशानुसार ही

---

1. एचीसन, सी.यू. जि. 2 भाग4, पृ. 187, बेसीन की संधि के समय बुन्देलखण्ड की अनुमानित आय 36 लाख रूपया वार्षिक थी। रार्बटस, पी.ई., बेलेजली के अधीन भारत, पृ. 179,

2. वेलेजली का पत्र सं. 220, राबर्टस, पी.ई. पृ. 180–181,सरदेसाई जी.एस. मराठों का नवीन इतिहास, जि.3. पृ. 433

3. ग्रान्ट डक, मराठों का इतिहास, पृ. 758, एचीसन, सी.यून; जि. 2. भाग 4, पृ. 187, राबर्टस, पी.ई., वेलेजली के अधीन भारत, पृ. 198–200

इस मराठा मण्डल ने यह योजना बनाई थी, कि इलाहाबाद से मिर्जापुर तक जो अंग्रेजी सेना एकत्रित हो चुकी है, उस पर बांदा के नवाब शमशेर बहादुर तथा कालपी के नाना गंगाधर राव के सहयोग से आक्रमण कर दिया जाय[1]।

हिम्मत बहादुर का षड़यंत्र

शमशेर बहादुर चूंकि पूना से चलकर अभी बुन्देलखण्ड नहीं पहुंचा था। अतः हिम्मत बहादुर ने सिंधिया के द्वारा भेजे गए पत्र को प्राप्त करने के लिए पश्चात गुप्त रूप से अंग्रेजों को इसकी सूचना दे दी[2]। वास्तव में वह अंग्रेजों के सहयोग से बुन्देलखण्ड में अपना राज्य स्थापित करना चाहता था[3]। इसलिए उसने यह दूरदर्शता पूर्ण निर्णय लिा। वह यह अच्छी तरह जानता था, कि मराठों की शक्ति का पतन शुरू हो चुका है और अंग्रेजों के विरूद्ध मराठे कभी भी सफल न हो सकेंगे। साथ ही साथ उसने अंग्रेजों को यह भी आश्वासन दे दिया, कि अब वे बुन्देलखण्ड पर आक्रमण करेंगे, तो वह उनकी हर तरह से सैनिक सहायता भी करेगा[4]। ऐसा करने के पीछे हिम्मत बहादुर का उद्देश्य अंग्रेजों के प्रति अपनी वफादारी साबित करना था। सिंधिया के द्वारा भेजे गए इस पत्र के परिणामस्वरूप अंग्रेजों तथा मराठों के

---

1. फ्रेंकलिन, जेम्स, मेमो. आन. बुन्देल. पृ. 271, एचीनसन, सी.यू. जि. 2, भाग4, पृ. 187 मिल. जेम्स, हिस्ट्री आफ ब्रिटिश इंडिया, जि. 7, पृ. 11

2. वेलेजली के पत्र 15 दिसम्बर 1803 ई. सरदेसाई, जी.एस.,जि. 3,पृ. 314 17 जून 1803 ई. को गर्व. जन. वेलेजली, को अब यह ज्ञात हुआ तो, उसने सिंधिया से इस संबंध में स्पष्टीकरण मांगा। लेकिन सिंधिया ने इस पत्र के भेजने के संबंध में अनभिज्ञता प्रकट की।

3. थौर्न, मेजर, बिलियम, मेमोयर आफ द वार इन इंडिया, पृ. 240

4. फ्रेंकलिन जेम्स, मेमोयर ऑन बुन्देलखण्ड, लन्दन 1825 ई. पृ. 271–272,

मध्य कटुता में व्यापक वृद्धि हो गई। साथ ही साथ हिम्मत बहादुर की मराठों के प्रति जो निष्ठा थी डगमगा गई। गोसांई नेता अब अंग्रेजों के साथ संधि करने के लिए ललायित हो उठा।

शमशेर बहुदर का पूना से कालिंजर आगमन तथा गनी बहादुर की गिरफ्तारी इसी मध्य शमशेर बहादुर भी पूना से कालिंजर आ पहुंचा। सर्वप्रथम उसने गनी बहादुर को बंदी[1] बनाने के पश्चात सेना को अपने अधिकार में करके, कालिंजर पर किये जा रहे आक्रमण को जारी रखने के आदेश दिये। हिम्मत बहादुर गोसांई ने जब गनी बहादुर की गिरफ्तारी का हाल सुना तो वह सर्तक हो उठा। सम्भवतः उसे यह भी आभास हो गया था, कि शमशेर बहादुर अब उसके साथ भी ऐसा ही व्यवहार करेगा। उसने अपनी सुरक्षा के उद्देश्य से अपने पुत्र कुंवर कंचन गिरि, कर्नल मिसिल बैंक तथा नवाब वजी उद्दीन खान को अंग्रेजों के साथ संधि करने के लिए इलाहाबाद भेजा[2]। अंग्रेजों ने इस संधि प्रस्ताव का उत्साह के साथ स्वागत किया। बेसीन की संधि से प्राप्त बुन्देलखण्ड के प्रदेश को लेने के लिए उत्सुक वेलेजली के लिए यह एक स्वर्णिम अवसर था।

हिम्मत बहादुर तथा अंग्रेजों के मध्य शाहपुर की संधि

4 सितम्बर 1803 ई. को इलाहाबाद के पास शाहपुर[3] में हिम्मतबहादुर तथा अंग्रेजों के ऐजेन्ट मरसर के मध्य एक गुप्त संधि हुई[4]। जिसके

---

1. बीले, थामस, बिलियम, एन. ओरि. बायो. डिक्श. पृ. 55
2. एचीसन, सी.यून. जि. 2, भाग4, पृ. 225—227
3. शाहपुर इलाहाबाद के 40 मील पश्चिम में जमुना नदी के किनारे पर स्थित है
4. एचीसन. सी.यून., जि. 2भाग4, पृ. 225, संधि सं. एल. एक्स.11 बांदा गजे. पृ. 178. जालौन गजे., पृ. 130 विस्तृत विवरण परिशिष्ठ (अ) में देखें।

अनुसार अंग्रेजों ने हिम्मतबहादुर को सिकन्दरा तथा बिन्दकी के परगनों के अतिरिक्त उसके भाई उमराव गिरि को मुक्त कराने का आश्वासन दिया जो कि अवध के नवाब वजीर की कैद में था। प्रति उत्तर में हिम्मत बहादुर ने भी अंग्रेजों को बुन्देलखण्ड में अभियान के समय पूर्ण सहायता देने का आश्वासन दिया। इस प्रकार हिम्मत बहादुर को अपनी ओर मिलाकर अंग्रेजों ने बुन्देलखण्ड की मराठों की शक्ति को कमजोर कर दिया।

शाहपुर की संधि के तुरन्त पश्चात कर्नल पावेल ने कुंवर कंचनगिरि, कर्नल मिसिल बैक तथा नवाब वजीउद्दीन खान को साथ लेकर इलाहाबाद से बांदा की ओर प्रस्थान किया। कर्नल पाविल के नेतृत्व में पांच देशी सैनिकों की टुकड़िया, एक घुड़सवार सेना तथा एक तोपखाने की टुकड़ी के अतिरिक्त, कर्नल केड, कैप्टन स्मिथ तथा अहमटी जैसे सेनानायक भी सहयोगी के रूप में थे[1]। इस सम्मिलित सेना ने 6 सितम्बर 1803 ई. को राजापुर के पास जमुना नदी को पार करके, 14 सितम्बर को बुन्देलखण्ड की सीमा में प्रवेश किया[2]। हिम्मत बहादुर लम्बे समय से अंग्रेजी सेना के आगमन की प्रतीक्षा में था।

हिम्मत बहादुर तथा कर्नल पावेल का सम्मिलन

16 सितम्बर 1803 ई. को हिम्मत बहादुर ने तराहोवां में[3] कर्नल पाविल की सेना की अगवानी की। इसके पश्चात इस सम्मिलित सेना ने

---

1. पोग्सन, डब्ल्यू. आर.ए.. हिस्ट्री आफ द बुन्देलाज, पृ. 123
2. थौर्न, मेजर बिलियम, मेमो. आफ द वार, पृ. 239, 240, ग्रान्ट डफ. पृ 758
3. तराहोवां, बांदा के 42 मील द.प. तथा कर्बी के 2 मील, द. में स्थित है।

तराहोवां के समीप पायसूनी नदी के किनारे दुर्गा ताल में पड़ाव किया। हिम्मत बहादुर के अधीन इस समय लगभग 14–15 हजार सैनिक थे। जिसमें 4 हजार सवार, 8 हजार पैदल, एवं 3 विदेशी सैनिकों की टुकड़ियां तथा 25 तोपों का एक ब्रिगेड तोपखाने का था। जिसका संचालक कर्नल मिसिल बैक था। इस सम्मिलित सेना ने पूर्वी बुन्देलखण्ड को जीतने के पश्चात तेजी से बांदा की ओर प्रस्थान किया। एक सप्ताह के भीतर यह सेना बांदा के पूर्वी भाग में स्थित किलों को जीतने के पश्चात 23 सितम्बर को केन नदी के दाहिने किनारे तक पहुंचने में सफल हो गई[1]।

शमशेर बहादुर द्वारा सुरक्षा के उपाय

अंग्रेजी सेना के आगमन की सूचना पाकर शमशेर बहादुर ने भी कालिंजर से घेरा उठाकर बांदा की ओर प्रस्थान किया। बांदा में आकर उसने अपने सैन्य संगठन की और भी सुदृढ़ किया। इस समय उसके पास एक ब्रिगेड तोपखाना था 12 हजार सैनिक थे। अंग्रेजी सेना का सामना करने के लिए उसने केन नदी को पार करके उसके दूसरे किनारे पर स्थित कनवारा नामक ग्राम में मोर्चा जमा दिया तथा कालपी के नाना तथा पूना के पेशवा से उसने सैनिक सहायता की मांग की।

नवाब शमशेर बहादुर तथा अंग्रेजों के मध्य युद्ध का प्रारम्भ

23 सितम्बर को अंग्रेजी सेना ने केन नदी के दूसरी ओर स्थित शमशेर बहादुर की सेना पर तोपों से गोले बरसाना आरम्भ कर दिये। शमशेर बहादुर की सेना ने अंग्रेजी सेना का जमकर विरोध किया। 14

---

1. थौर्न, मेजर बिलियम, पृ. 241, जैम्स ग्रान्ट, जि.1 भाग2, पृ. 377

दिन तक निरन्तर गोलाबारी होती रही। अन्ततः 10 अक्टूबर को अंग्रेजों की सेना केन नदी के दूसरे किनारे तक पहुंचने में सफल हो गई। शमशेर बहादुर की सेना को विवश होकर पीछे हटना पड़ा। केन नदी को पार करने के पश्चात अंग्रेजों तथा हिम्मत बहादुर की संयुक्त सेना ने भूरागढ़ के किले पर अधिकार कर लिया। इसके पश्चात शमशेर बहादुर की सेना ने भूरागढ़ के किले को पुनः अपने अधिकार में करने के लिए उस पर गोले बरसाये, लेकिन अंग्रेजी सेना के शक्तिशाली प्रहार के कारण शमशेर बहादुर को असफलता ही हाथ लगी।

कपीसा का युद्ध

भूरागढ़ के युद्ध में पराजित हो जाने के पश्चात शमशेर बहादुर की सेना अंग्रेजी सेना का अधिक समय तक विरोध न कर सकी। शीघ्र ही उसने पीछे हटकर कपिसा[1] नामक ग्राम में मोर्चा जमाया। 12 अक्टूबर को कर्नल पाविल ने आगे बढ़कर शमशेर बहादुर की सेना पर पुनः धावा बोल दिया। इस युद्ध में भी शमशेर बहादुर की पराजय हो गई और उसको पीछे हटना पड़ा। शमशेर बहादुर के पास अब कोई ऐसा दुर्ग नहीं बचा था, जोकि उसे सुरक्षा प्रदान करता।

कपिसा से पलायन करने के पश्चात शमशेर बहादुर ने अपनी सेना सहित बेहट के पास बेतवा नदी को पार करके कालपी में जाकर शरण ली। कालपी के मराठा सूबेदार नाना गोविन्द राव ने शमशेर बहादुर के साथ मिलकर अंग्रेजों का विरोध करने का निश्चय किया। नाना गोविन्द राव भी शमशेर बहादुर की तरह उस मराठा मण्डल का सदस्य था, जो कि अंग्रेजों के विरूद्ध आंग्ल मराठा युद्ध में सम्मिलित

---

1. कपिसा ग्रगाम बांदा के 9 मील पश्चिम में स्थित है।

हुए थे। अंग्रेजों ने भी इस समय तक मराठा मण्डल के विरूद्ध बहुत सी सैनिक सफलताऐं प्राप्त करली थी। नवम्बर 1803 ई.0 आगरा के समीप हुए लासबाड़ी के युद्ध में सिंधिया की पराजय से लार्ड वेलेजली का साहस बहुत बड़ गया। उसने अपने अंग्रेज सेनापतियों को यह आदेश दे दिये, कि वह शीघ्र अति शीघ्र शेष क्षेत्रों को भी अपने अधिकार में कर लें।

कालपी का युद्ध

कर्नल पावेल में कपिसा की विजय के पश्चात शमशेर बहादुर का पीछा करते हुए, तमाम अवरोधों को पार करके कालपी के किले का घेरा डाल दिया। शमशेर बहादुर इस परिवर्तितत स्थिति के कारण अंग्रेजों से संधि करना चाहता था परन्तु नाना के सहयोग तथा कर्नल पावेल की कठोर शर्तो के कारण संधि वार्ता भंग हो गई। वास्तव में कालपी का घेरा डालने के पश्चात कर्नल पावेल की यह इच्छा थी, कि कालपी का नाना अंग्रेजी सेना के समक्ष बिना शर्त आत्म समर्पण कर दें। परन्तु नाना किसी भी स्थिति में किला सौंपने को तैयार न था। अतः दिसम्बर 1803 ई. में मराठों तथा अंग्रेजों के मध्य पुनः युद्ध प्रारम्भ हो गया।

कालपी पर अंग्रेजों का अधिकार

4 दिसम्बर 1803 ई. को प्रातः कर्नल पावेल ने 200 गज की दूरी से कालपी के किले पर गोले बरसाने शुरू कर दिये। इस समय उसके पास दो भारी तोपखाने की टुकड़ियां तथा कई सैनिक दस्ते थे। दोपहर 11 बजे तक निरन्तर गोलाबारी का क्रम जारी रहा। जिसके कारण मराठों की सेना के पैर उखड़ गये। दोपहर बाद किले पर

अधिकार करने के साथ ही साथ कर्नल पावेल की सेना कालपी नगर पर भी अधिकार कर लिया। इस प्रकार नाना गोविन्द राव जो कि शमशेर बहादुर की सहायता कर रहा था। अपने प्रदेश से हाथ धो बैठा। इसी क्रम में कालपी के अतिरिक्त कोटरा सैयद नगर तथा कोंच पर भी अंग्रेजी सेना ने आक्रमण करके अधिकार कर लिया।

नवाब शमशेर बहादुर द्वारा आत्म समर्पण

12 दिसम्बर 1803 ई. को मराठा सरदार अम्बा जी इंग्ले की सेना का अंग्रेज सेनापति शैफर्ड मराठों का साथ छोड़ कर अंग्रेजी सेना जा मिला[1]। कालपी के युद्ध में हुई पराजय के पश्चात मराठों का मनोबल गिर चुका था। अतः विवश होकर शमशेर बहादुर ने अंग्रेजों के साथ पुनः संधि वार्ता प्रारम्भ की। 10 जनवरी 1804 ई. को अंग्रेजों ने शमशेर बहादुर के पास संधि के मसौदे को भेजा[2]। 12 जनरी 1804 ई. को नवाब शमशेर बहादुर का वकील हालाजाद खां एक संधि पत्र लेकर कैप्टन, जौन बेली के पास गया जोकि इस समय बुन्देलखण्ड में गवर्नर जनरल की ओर से कम्पनी का एजेन्ट नियुक्त किया गया था। प्रस्तावित संधि की धारा के अनुसार 18 जन. 1804 ई. को, नवाब शमशेर बहादुर ने स्वयं कैप्टन जौन बेली के कैम्प में उपस्थित होकर आत्म समर्पण कर दिया[3]।

2 फरवरी 1804 ई.0 को गवर्नर जनरल की कौंसिल ने इस संधि

---

1. पोग्सन, पृ. 125, थौर्न, मेजर विलियम, पृ. 243, जालौन, गजे. पृ. 131
2. बांदा गजे. , पृ. 178,
3. एचीसन, सी.यू. जि. 2, पृ.227–228, पोग्सन, पृ. 125, थौर्न, मेजर बिलियम, मैमो. आफ वार, पृ. 245, मगरबी, सैयद इलयास मुहम्मद, पृ. 98।

की पुष्टि कर दी। इस प्रकार शमशेर बहादुर ने अंग्रेजों के सम्मुख धुटने टेक दिये। यह उल्लेखनीय है, कि झांसी के सूबेदार सदा शिवराव भाऊ ने नवाब शमशेर बहादुर के समर्पण के पूर्व ही अंग्रेजों के समक्ष समर्पण कर दिया था। इस घटना से भी शमशेर बहादुर का मनोबल गिर गया था। फलतः उसे भी अंग्रेजों के सम्मुख आत्म समर्पण के लिए बाध्य होना पड़ा।

इस प्रकार अंग्रेजों ने उत्तरी भारत में पेशवा के अधीनस्थ सरदारों को पराजित करके मराठों की शक्ति का सर्वनाश कर दिया। इन मराठा सरदारों के साथ भी लार्ड बेलेजली की ओर कैप्टेन जौन बेली ने संधियां करके उनको मराठों की निष्ठा से पृथक कर दिया। मराठों के पराभव से बुन्देलखण्ड को अधिकृत करने की अंग्रेजों की दीर्घकाल से चली आ रही अभिलाषा पूर्ण हों गई। चम्बल से नर्मदा तक अंग्रेजी सत्ता का प्रसार हो गया जिसकी योजना कभी गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंगज ने बनाई थी।

शमशेर बहादुर तथा अंग्रेजों के मध्य संधि

नवाब शमशेर बहादुर ने इस संधि के अनुसार 4 लाख रूपये की वार्शिक पेंशन के एवज में अपना सम्पूर्ण साम्राज्य अंग्रजों को सौंप कर बांदा में रहना स्वीकार कर लिया जहां शमशेर बहादुर ने अपने रहने के लिए मुस्लिम एवं पाश्चात स्थापत्य कला के अंतर्गत महल बनवाये[1] नवाब शमशेर बहादुर को अंग्रेजी सरकार ने यह भी सुविधा प्रदान की कि जो गांव तथा परगने उसकी व्यक्तिगत जायदाद के रूप में मौदहा में हवै, वह नवाब के पास ही बने रहेंगे। इन परगनों की आय लगभग

---

1. पोग्सन, डब्ल्यू, आर;ए. हिस्ट्री आफ द बुन्देलाज, पृ. 126

2 लाख रूपया वार्षिक थी। इस आय पर अंग्रेजों की ओर किसी प्रकार का कोई कर नहीं लिया जाता था। शमशेर बहादुर को सम्मान स्वरूप नवाब का खिताब तथा 15 तोपों की सलागी का अधिकार भी दिया गया। नवाब शमशेर बहादुर और उसके परिवार के सदस्यों को अदालत के समक्ष उपस्थित न होने के विशेषाधिकार भी दिये गये। शमशेर बहादुर को अपनी सुरक्षा के लिए स्वयं की सेना रखने का भी अधिकार दिया गया।

हिम्मत बहादुर गोसांई की मृत्यु

12 जनवरी 1804 ई. को हुई संधि के परिणामस्वरूप अंग्रेजों ने बांदा को अधिकृत करने के पश्चात स्थानीय बुन्देला सरदारों के विद्रोहों का दमन करने के लिए जब सैनिक अभियान शुरू किये, तब हिम्मत बहादुर ने भी अपनी सेना के साथ उनको सहयोग दिया। शमशेर बहादुर के पतन के पश्चात हिम्मत बहादुर ने अंग्रेजों के साथ हुई संधि के आधार पर पगरना सिहोंदा तथा बिन्दगी की मांग की जिसे अंग्रेजों ने अस्वीकृत कर दिया। इसके बदले में हिम्मतबहादुर को अंग्रेजों ने कानुपर के सिंकदरा तथा राजधन के परगने दे दिये[1]। इसके अतिरिक्त बुन्देलखण्ड में उसे मौदहा, हमीरपुर, छौन तथा दौसा के परगने भी दिये गये[2]। जिससे इसका राज्य कालपी से इलाहाबाद तक फैल गया। इस समस्त जागीर की आय लगभग 20 लाख रूपये वार्षिक थी। साथ ही साथ हिम्मत बहादुरी की सैनिक क्षमता में वृद्धि करने की अनुमति भी प्रदान की गई। इस सेना का सहयोग प्राप्त करके

---

1. बांदा गजे. डी.एल. डेक. ब्रोकमेन, उ. 179, मुशी शामलाल, पृ. 51–52
2. तिवारी, गोरेलाल; बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, पृ. 282,284

अंग्रेजाकें ने बुन्देलखण्ड में अपनी सत्ता का प्रभाव जमाने में सफलता प्राप्त की।

24 जनवरी 1804 को वृद्धावस्था के कारण 70 वर्ष की आयु में हिम्मत बहादुर का बांदा में स्वर्गवास हो गया। उसकी समाधि बांदा से 4 मील की दूरी पर केन पदी के किनारे पर स्थित कनवारा नामक ग्राम में आज भी विधमान है। यह गोसांई नेता का दुर्भाग्य ही कहा जायेगा, कि जिस राज्य की प्राप्ति के लिए वह जीवन भर लालायित रहा। उस राज्य को भोगने का उसे अवसर न मिल सका। शायद यही उसका प्रारब्ध था।

हिम्मत बहादुर के बाद उसके उत्तराधिकारी

हिम्मत बहादुर की मृत्यु के पश्चात इसका अवैध पुत्र कुंवर नरेन्द्र गिरि इसका उत्तराधिकारी हुआ। वह अव्यस्क था, अतः उसका संरक्षक कुंवर कंचन गिरि को बनाया गया। जिसकी सहायता के लिए उमराव गिरि भी अवध से आ गया जिसे अंग्रेजों ने संधि की शर्तो के आधार पर मुक्त करा दिया था। नरेन्द्र गिरि अपने पिता महाराजा हिम्मत बहादुर के समान प्रभावशाली नहीं था। इस कारण सिकन्दरा एवं बिंदकी परगनों को छोड़कर पूरा 20 लाख रूपये का सैनिक व्यय क्षेत्र कंपनी सरकार ने छीन लिया। केवल 12 ग्रामों की पुकारी जागीर हिम्मत बहादुर की विधवा पत्नी को दी गयी।

कुछ समय बाद पुकारी जागीर के 10 गांव छीनकर उसके पास किसवाही एवं बिजनऊ गांव ही शेष छोड़े गये। सन 1830 ईस्वी में हिम्मत बहादुर की विधवा पत्नी तथा सन् 1840 ईस्वी कुंवर नरेन्द्र गिरि की मृत्यु के पश्चात अंग्रेजों ने उसकी समस्त जायदाद जब्त कर ली।

उमराव गिरि को खर्च के लिए 1 हजार रूपया मासिक पेंशन देने की व्यवस्था कर दी गई। नरेन्द्रगिरि के भाई कंचनगिरि को अंग्रेजों ने खर्च के लिए 2 हजार रूपया मासिक की पेंशन बांध दी। इसकी मृत्यु के पश्चात अंग्रेजों ने इसके उत्तराधिकारी की पेंशन भी बंद कर दी। इस प्रकार बुन्देलखंड से गोसांई सत्ता का अस्तित्व लगभग समाप्त हो गया।

अध्याय – षष्ठम
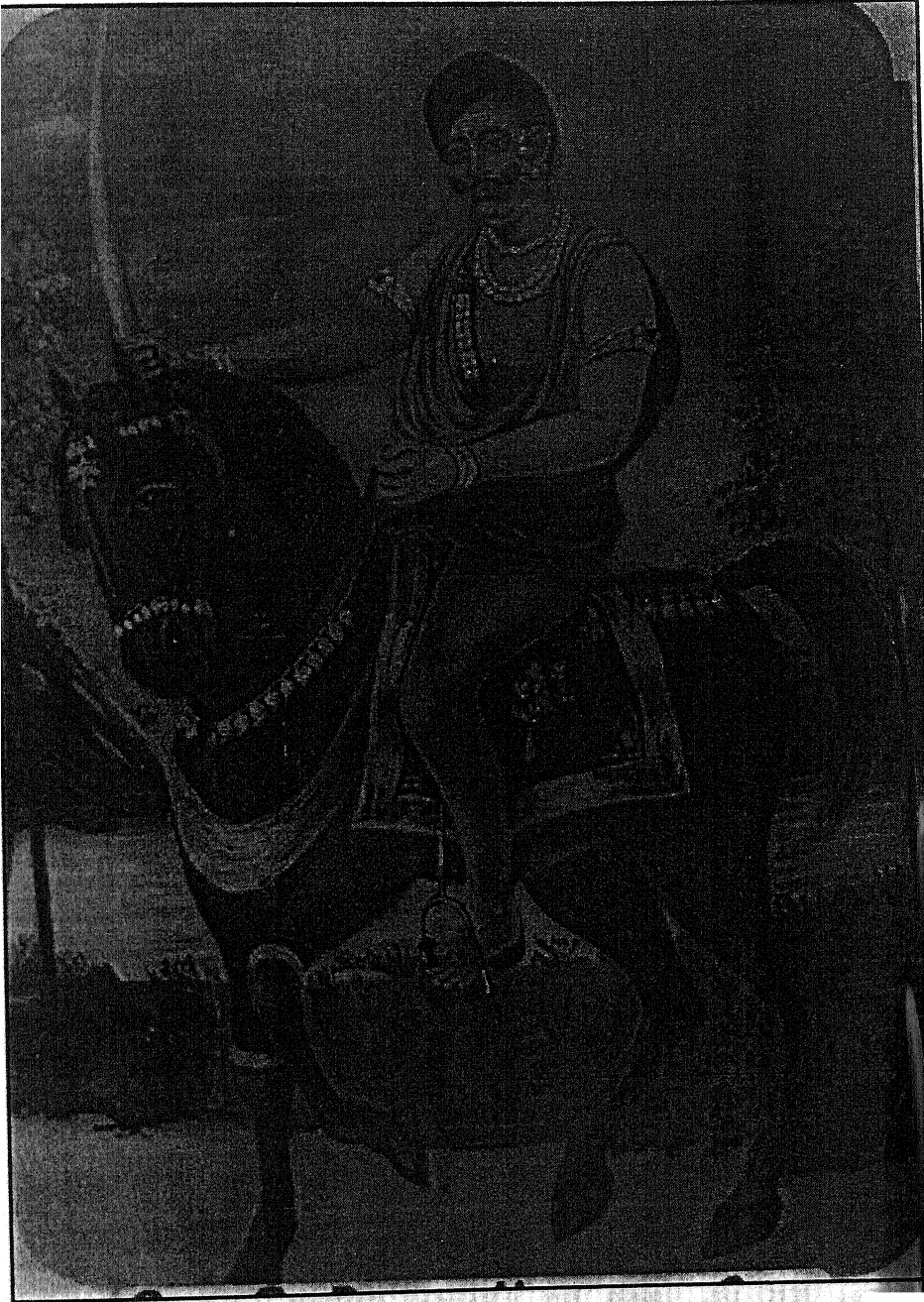
उमराव गिरि गोसांई

उमराव गिरि गोसांई

अध्याय–षष्ठम

उमराव गिरि गोसांई

राजेन्द्र गिरि गोसांई जिन दो ब्राहमण बालकों को 'कुलपहाड़' से लेकर आया था और उनका पालन पोषण किया था उनमें से राजेन्द्र गिरि ने बड़े बालक का नाम उमराव गिरि तथा छोटे का अनूप गिरि रक्खा था। राजेन्द्र गिरि कालान्तर में अवध के नवाब सफदरजंग का कृपापात्र बन गया और अपनी शूरवीरता के बल पर वह सफदरजंग की सेना का कमांडर (सेनापति) बन गया। राजेन्द्र गिरि की इमादुल्मुल्क से युद्ध करते समय दिल्ली में 14 जून 1753 ईस्वी में मृत्यु हो गयी।

उमराव गिरि को नवाब सफदर जंग ने राजेन्द्र गिरि की मृत्यु के बाद नागा सैन्य दल का सेनानायक बनाया था। सैन्य संचालन अनूप गिरि करता था और उमराव गिरि उसका साथ देता था। दोनों भाईयों में अन्त तक फूट या मन मुटाव नहीं हुआ।

अंग्रेजों से शाहपुर 1803 ईस्वी में अनूप गिरि (हिम्मत बहादुर) ने जो संधि की थी उसमें एक शर्त यह भी थी कि उसके बड़े भाई उमराव गिरि को अवध के नवाब की कैद से मुक्त कराना था।[1] उमराव गिरि ने अपने भाई अनूपगिरि (हिम्मत बहादुर) के साथ शुक्रताल (1759ई.) पानीपत (1761ई.) एवं बक्सर का युद्ध (1764ई.)

---

1. गुप्ता भगवान दास; मस्तानी बाजीराव और उसके बंशज बांदा के नवाब, पृष्ठ–49

में कंधे से कंधा मिलाकर साथ दिया था और बुन्देलखण्ड पर कई आक्रमण किये। बक्सर के युद्ध के पश्चात उमराव गिरि अपने भाई अनूपगिरि (हिम्मत बहादुर) के साथ कुछ समय के लिये जवाहर जाट और मराठा सरदार रघुनाथ दादा के पास रहा। इसके बाद वह फिर शुजाउद्दौला के पास आया और उसके उत्तराधिकारी नवाब आसफउद्दौला की सेवा में रहा। आसफउद्दौला ने राजकीय खर्च कम करते हुये उन्हें निकाल दिया तो दोनों भाई 1776 ई. में नजफ खां की सेवा में चले गये थे। बाद में दिल्ली में महाद्जी का सितारा बुलन्द होने पर उनके पास चले गये थे।

दोआब का सिंन्धिया विरोधी विद्रोह और उमराव गिरि

दोनो भाई जब महाद्जी के पास थे, तो उस समय महादजी सिन्धिया ने उन्हें मोंठ की जागीर दी और सालाना खर्च के लिये पांच लाख की जागीर प्रदान की थी। महाद्जी उन्हें वृन्दावन में ही रखना चाहते थे। इस बात पर वे बिगड़ गये तथा अवध भाग गये और सिंन्धिया विरोधी कार्यों में जुट गये।[1]

8 मार्च 1786 ई. में उमराव गिरि ने दोआब में महादजी सिंन्धिया के विरूद्ध विद्रोह खड़ा कर दिया। इसके बाद अनूप गिरि भी उससे जा मिला। यह समाचार सुनकर महाद्जी ने अम्बाजी इंगले को उमराव गिरि को पकड़कर लाने का आदेश दिया। जब इंगले के आने का समाचार उमराव गिरि को मिला तो वह कासगंज भाग गया।[2]

---

1. गुप्ता भगवानदास (वही) पृष्ठ–49
2. सरकार, यदुनाथ; मुगल साम्राज्य का पतन, भाग–3, पृष्ठ 214

सन् 1788 ई. में धौलपुर के निकट उमरावगिरि को एक युद्ध में हराकर महाद्जी ने उसे बन्दी बना लिया।[1] बाद में गुलाम कादिर के दिल्ली हथिया लेने के बाद उसने उमराव गिरि को मुक्त कर दिया और दोनों गोसांई भाईयों को अपनी सेना में वापस रख लिया। इसके बाद 1789 ईस्वी में बुन्देलखण्ड में पेशवाई हितों की रक्षा के लिये नाना फड़नवीस ने बाजीराव की प्रेमिका मस्तानी के पुत्र अली बहादुर को बुन्देलखण्ड भेजा।

इसी समय मौका पाकर उमराव गिरि गोसाई और अनूप गिरि (हिम्मत बहादुर) अली बहादुर की सेना में शामिल हो गये। अली बहादुर के साथ दोनों गोसांई बंधुओं ने बुन्देलखण्ड विजय अभियान में उसका साथ दिया। बाद में अवध के नवाब ने उमराव गिरि को लखनऊ में कैद कर लिया। इसके बाद अनूप गिरि (हिम्मत बहादुर) की 4 सितंबर 1803 को अंग्रेजों से हुयी संधि में उमराव गिरि को अवध के नवाब की कैद से मुक्त कराने की शर्त रखी गयी। संधि के पश्चात उमराव गिरि को मुक्त कर दिया गया।

हिम्मत बहादुर गोसांई की 1804 ईस्वी में हुयी मृत्यु के बाद उसके साम्राज्य पर हिम्मत बहादुर का अल्पव्यस्क पुत्र नरेन्द्र गिरि शासक हुआ। नरेन्द्र गिरि को कुछ स्थानों पर निरंद गिरि के नाम से भी उल्लेखित किया गया है। उसे हिम्मत बहादुर की मुस्लिम पत्नी से उत्पन्न पुत्र माना गया है।[2] नरेन्द्र गिरि के संरक्षक के रूप में उसके चाचा उमराव गिरि ने अप्रत्यक्ष रूप से शासन का संचालन

---

1. गुप्ता, भगवान दास (वही), पृष्ठ–49
2. पोग्सन के.डब्लू. आर; ए हिस्ट्री आफ बुन्देलाज, पृष्ठ–126

किया। वह उसकी सभी जागीरों की देखभाल करता था। सन 1830 में हिम्मत बीादुर की विधवा पत्नी स्वर्गवासी हो गयी। उसके बाद 1840 ई. में नरेन्द्र गिरि की मृत्यु के बाद अंग्रजों ने उसकी जागीर जब्त कर ली।

इसके बाद अंग्रेजों ने नरेन्द्र गिरि के छोटे भाई कंचन गिरि को 2000 रु. मासिक और उमराव गिरि को 1000 रू. मासिक पेंशन देना मुकर्रर कर दिया।[1] कुछ वर्षो बाद उमराव गिरि की भी मृत्यु हो गयी। इस प्रकार उमराव गिरि की मृत्यु के बाद बुन्देलखंड में गोसांई सत्ता का अस्तित्व लगभग समाप्त हो गया।

1. तिवारी, गोरे लाल (वही) पृष्ठ–282

अध्याय—सप्तम

गोसांई शासकों के समय बुन्देलखंड की स्थापत्य कला तथा सांस्कृतिक गतिविधियाँ

अध्याय–सप्तम

गोसांई शासकों के समय बुन्देलखंड की स्थापत्य कला तथा सांस्कृतिक गतिविधियाँ

बुन्देलखंड की राजनैतिक गतिविधियों को सौ वर्ष से भी अधिक समय तक प्रभावित कर अपना वर्चस्व कायम रखने वाले विभिन्न गोसांई शासकों और उनके अनुयायियों ने झाँसी एवं उसके आस–पास अनेक मठ, मंदिर, समाधि और गढियों (लघुदुर्ग) का निर्माण कराया।

(अ) स्थापत्य कला

गोसांईयों ने अपने निवास हेतु विशाल गढ़ी (लघु दुर्ग) तथा मठों के साथ–साथ पूजा–अर्चना हेतु मन्दरों का निर्माण करवाया। मूलतः गोसांई सन्यासी थे अतः मृत्योपरान्त इनके शवों का अग्नि संस्कार न करके इन्हें समाधिस्थ किया जाता था। इनकी समाधियों पर मन्दिरों को बनाकर शिवलिंग स्थापित किया जाता था। गोसांई शासक शंकराचार्य के शिष्य के रूप में शैव अनुयायी रहे अतः उन्होंने अधिकाशतः शैव मन्दिरों का ही निर्माण कराया।[1]

झाँसी गोसांइयों का मुख्य केन्द्र था अतः यहाँ उनके मन्दिर और विशाल मठ बनाये गये तथा बाद में समाधि मन्दिरों का निर्माण भी हुआ। गोसांई शासकों द्वारा इस शहर के अंदर और बाहर अनेक बागों का भी निर्माण कराया गया। निर्माण शैली में गोसाइयों के इन

---

1. जोशी, इला बसंती "झाँसी गजेटियर" पृष्ठ–48
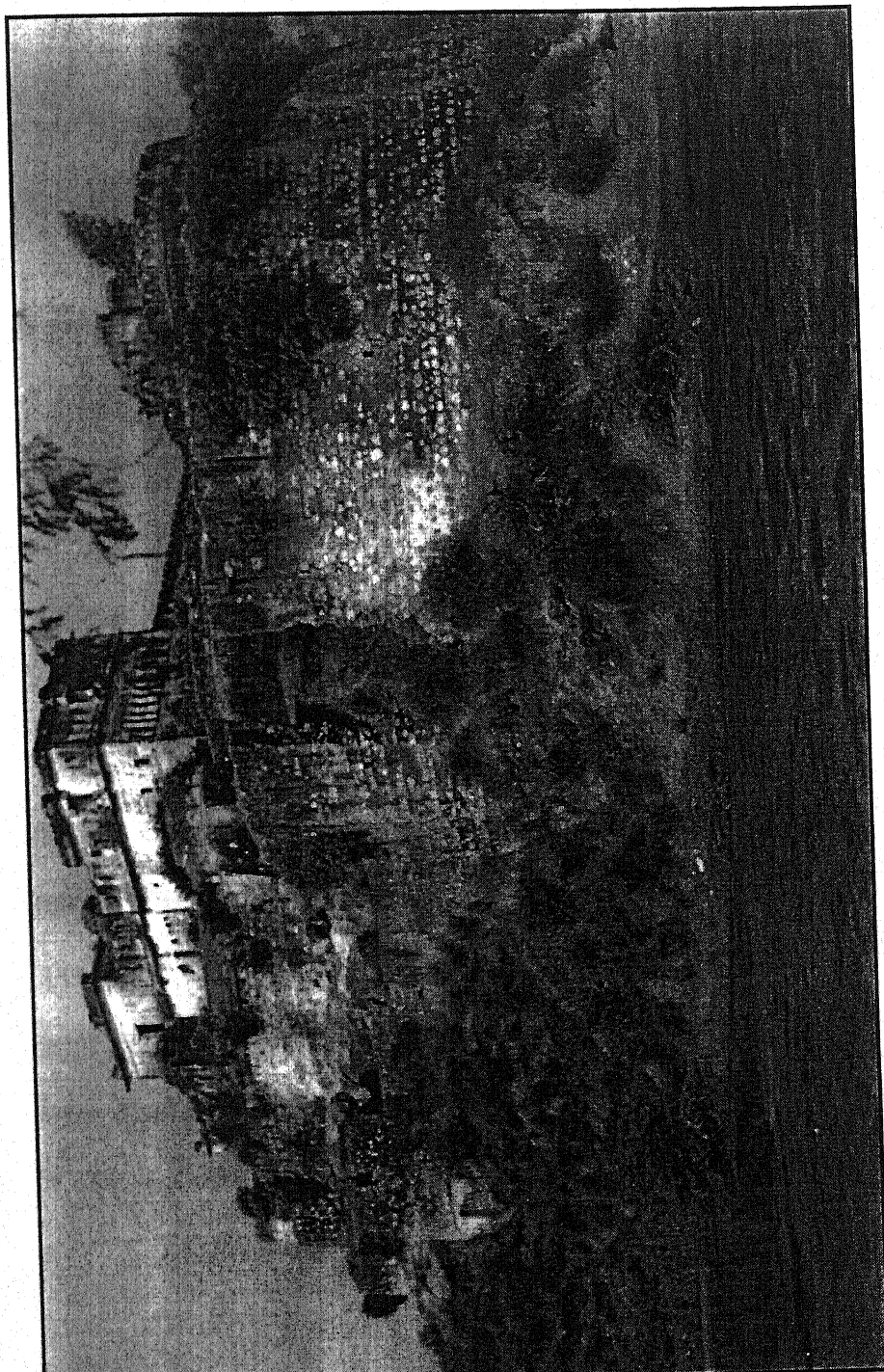
गोसांई शासक राजेन्द्र गिरि द्वारा अमर गढ़ में बनवायी अमरा की गढ़ी

मन्दिरों एवं समाधियों को खजुराहो की चन्देलकालीन, बुन्देली तथा मराठा परम्परा के अनुरूप बनाया गया।

गोसांई शासकों द्वारा कराये गये निर्माण कार्यो के संबंध में जनश्रुतियों से प्राप्त उल्लेख के अनुसार गोसांई दल में गिरि वर्ग के इन्द्रगिरि के अतिरिक्त पुरी वर्ग के नारायण पुरी, सबदलपुरी, सुन्दर पुरी और सुगन्ध पुरी ने झाँसी के विकास में असीमित योगदान दिया। कहा जाता है कि गोसांइयों के इन पांचों मुखियाओं ने संगठित होकर एक गोसांई समिति बनायी और ''गोसाईपुरा'' बस्ती को बसाया। इस बस्ती के मध्य में एक विशाल मठ का निर्माण कराकर उसमें राजराजेश्वरी माँ जगदम्बे की बीस भुजा वाली मूर्ति स्थापित कर झाँसी की सुरक्षा कार्य का विस्तार किया। कालान्तर में गोसांई समिति के अधिकारी तथा प्रबंधकों के लिये शहर में बारह मठ और दो सौ कुओं का निर्माण कराया गया। गोसांईपुरा में आवास निर्माण के लिये लोगों को प्रोत्साहन दिया। इससे शहर के इस भाग में झाँसी के समीप ओरछा, पालर, दतिया और दिनारा आदि स्थानों के धनी व्यक्तियों ने हवेली और जनसाधारण ने मकान तथा दुकानें बनवायी। इसी के चलते बड़ागाँव दरवाजे बाहर सुन्दरपुरी ने महाकालेश्वर का भव्य मंदिर, बावडी और उद्यान तथा नारायण पुरी ने नारायण बाग, चौपडा एवं दस कुओं का निर्माण कराया। इसके अलावा सुगन्ध गिरि ने लक्ष्मीताल के समीप सिद्ध की बगिया में एक सरोवर, मठ और मंदिर का निर्माण कराया तथा ओरछा गेट बाहर एक मंदिर, चौपडा एवं बावडी का निर्माण किया।

इस प्रकार अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक के लगभग सौ वर्षो में गोसांई शासक राजेन्द्रगिरि, अनूप गिरि (हिम्मत बहादुर) एव उमराव गिरि के अलावा नागा सैनिकों तथा सन्यासियों के नाम पर उनके अनुयायी पुरियों तथा गिरियों द्वारा इन मन्दिरों और स्मारकों का निर्माण कराया गया। कहीं–कहीं पर इन मंदिरों के साथ घाटों से युक्त तालाबों, बाबड़ी और कुओं का निर्माण भी हुआ जो गोसांई शासकों की जनहित एवं धार्मिक भावना का द्योतक है। गोसांइयों की स्थापत्य कला को प्रमुख रूप से चार भागों में बांटा जा सकता है।

(i) मन्दिर

(ii) मठ

(iii) समाधि मन्दिर अथवा मड़िया

(iv) दुर्ग अथवा गढ़ी (छोटा किला)

बुन्देलखंड में ये मंदिर, मठ तथा समाधियां वास्तुकला एवं मूर्तिकला के श्रेष्ठ उदाहरण है। कहीं–कहीं इन स्मारको पर श्रेष्ठ चित्रकला भी नजर आती है।

(i) मन्दिर

गोसांई शासक हिन्दू धर्म के पुनरूद्धारक आदि शंकराचार्य के शिष्य के रूप में शैव अनुयायी रहे। इस कारण गोसांइयों द्वारा अधिकांशतः शैव मन्दिरों का ही निर्माण कराया गया। इनमें शिवलिंग

के अलावा चतुर्मुखी अथवा पंचमुखी मानस शिवलिंगों की प्रतिष्ठा हुयी। कहीं-कहीं पर इन शिव मन्दिरों में सहस्रलिंगेश्वर के नाम पर विशाल शिवलिंग प्रतिष्ठित हैं। इस प्रकार के शिवलिंग के उर्ध्वभाग में ग्यारह पड़ी हुयी रेखायें होती है। जो शिव के ही एक रूप 'रूद्र' के नाम पर 'एकादश रूद्र' का प्रतीक स्वरूप हैं।

प्रत्येक पड़ी रेखा में सौ अथवा एक सौ आठ छोटे शिवलिंग उत्कीर्ण रहते है। गोसांई शासकों द्वारा निर्मित अधिकांश शैव मन्दिर खजुराहो मंदिरों की भाँति ऊचे प्रतिष्ठानों पर निर्मित हैं। मंदिरों के गर्भगृहों में आयताकार अन्तराल व मण्डप के अलावा कहीं-कहीं प्रदक्षिणा पथ की भी व्यवस्था की गयी है। अधिकांश मन्दिरों के गर्भगृह वर्गाकार एवं अष्ट भुजाकार रूप में निर्मित है। इन मन्दिरों का बाह्य भाग उरूश्रंगों से युक्त कोणाकार, स्तूपाकार तथा घंटाकृति रूप में आठों दिशाओं में छोटे-छोटे मंदिरों के साथ शोभायमान है। गोसांइयों द्वारा निर्मित कुछ मन्दिरों में खजुराहों के मन्दिरों की पंचायतन शैली के रूप में अधिष्ठापन पर चारों कोनो पर चार लघु मंदिर निर्मित किये गये है और कहीं-कहीं सामने की ओर ही दो लघु मन्दिरों का निर्माण किया गया। इन मन्दिरों के शिखर भाग बीजपूरक, बड़े व छोटे आमलक, चन्दिका तथा कलश आदि आवश्यक अंगों से परिपूर्ण है।

गोसांई शासकों द्वारा झाँसी एवं उसके आस-पास निर्मित किये गये प्रमुख मन्दिर निम्न है :-

1. पानी वाली धर्मशाला का शिव मन्दिर–

इस मंदिर के गर्भगृह में सहस्रलिंग स्थापित है। गर्भगृह वर्गाकार है और चारो दीवारों पर स्थित आलों में भी गणेश, महिषासुर मर्दिनी, गरूण तथा भगवान विष्णु की मूर्ति है।

गर्भगृह के अंदर विशाल शिवलिंग है जो सहस्रलिंग के रूप में काले पत्थर द्वारा निर्मित है। इसकी लम्बाई लगभग साढे पांच फिट
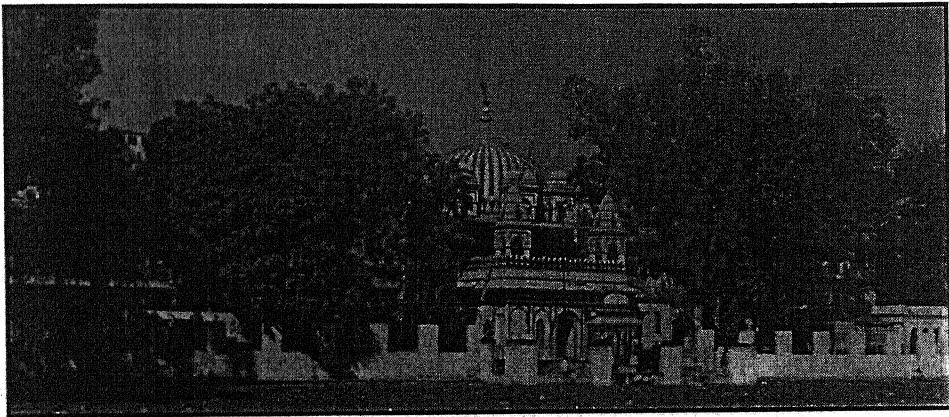
पानी वाली धर्मशाला का शिव मन्दिर
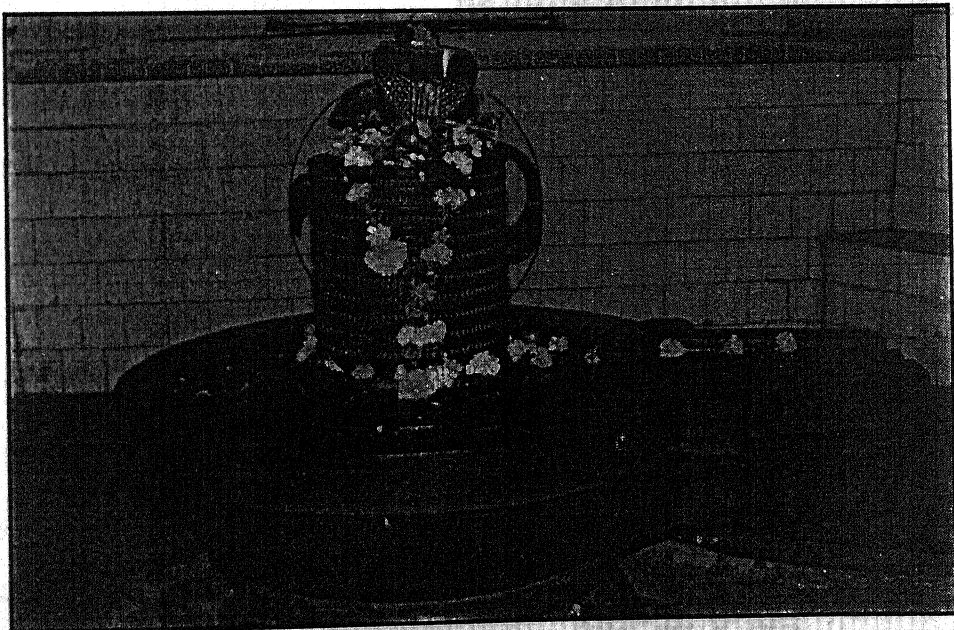
पानी वाली धर्मशाला के शिव मन्दिर में स्थापित सहस्रलिंग

और ऊँचाई लगभग चार फिट है। इस शिवालय में गर्भगृह के बाहर नंदी विराजमान है और लघु मण्डप के वितान पर मराठा कालीन चित्रकारी है। इसमें विशेष रूप से शेषशायी विष्णु का चित्रण उल्लेखनीय है।

इस शिव मंदिर का परिक्रमा पथ बाहर है और सामने तालाब है। मंदिर का ऊपरी भाग कलश के आकार का है। इसमें बड़ा आमलक, छोटा आमलक, बीज पूरक और कलश निर्मित है। इसके ऊपरी भाग में बाहर की ओर दो लघु मन्दिरों के बीच पालकीनुमा मंडप है।

2. दीक्षित बाग का शिव मन्दिर –

गर्भगृह एवं उसके चारों ओर प्रदक्षिणा पथ से समायोजित दीक्षित बाग का यह भव्य शिव मन्दिर बुन्देला स्थापत्य शैली का उत्कृष्ठ उदाहरण है। इस मंदिर के वर्गाकार गर्भगृह की बीचों–बीच एक विशाल सहस्रलिंग स्थापित है। इसकी लंबाई भी लगभग साढे पांच फिट एवं ऊचाई लगभग चार फिट है। इसके गर्भगृह की दीवार में अन्दर की ओर स्थित आलों में भगवान गणेश, सिंहवाहिनी मां दुर्गा, शेषशायी विष्णु सप्त
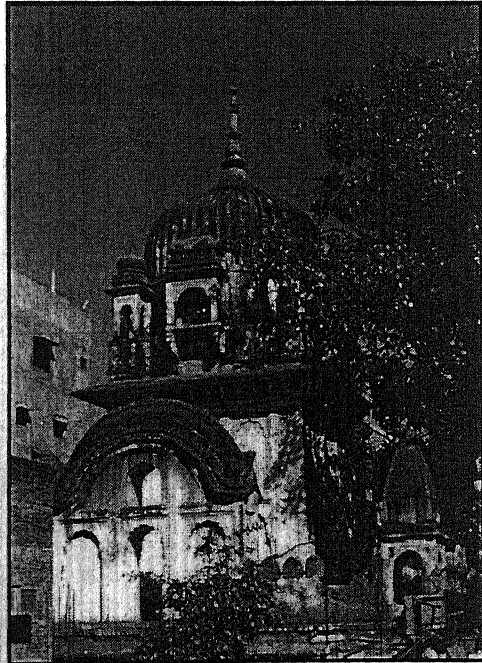
दीक्षित बाग में स्थित
शिव मन्दिर

अश्वारूढ़ सूर्य, द्विभुजाधारिणी लक्ष्मी और कार्तिकेय की प्रतिमाये स्थापित है।

इस गर्भगृह की बाहरी दीवार पर भगवान विष्णु के दशावतार की मूर्तियां स्थित है। इसमें परिक्रमा पथ मंदिर के अंदर ही है। मुख्य द्वार पर विशाल नंदी की प्रतिमा विराजमान है। इस मंदिर का वाहय शिखर छंटाकार है। मंदिर के चारों कोनो पर ऊपर की ओर दो लघु मन्दिरों के बीच पालकीनुमा मंडप है। इसके शिखर पर बड़ा आमलक, छोटा आमलक, बीजपूरक तथा कलश निर्मित है। इसकेउत्त्र दिशा की ओर एक छोटा मंदिर है। इसमें सामान्य शिवलिंग के सर्वोच्च भाग पर पंचवृत्त लिंग स्थापित है। इस मंदिर की प्रतिमायें प्रतिमा विज्ञान तथा धार्मिक दृष्टि से अत्यंत महात्वपूर्ण है।

3. लक्ष्मीताल का सिद्धेश्वर मन्दिर –

यह मन्दिर लक्ष्मीताल के समीप स्थित है और बुन्देला स्थापत्य शैली की विशेषताओं से परिपूर्ण है। इसके गर्भगृह में काले पाषाण
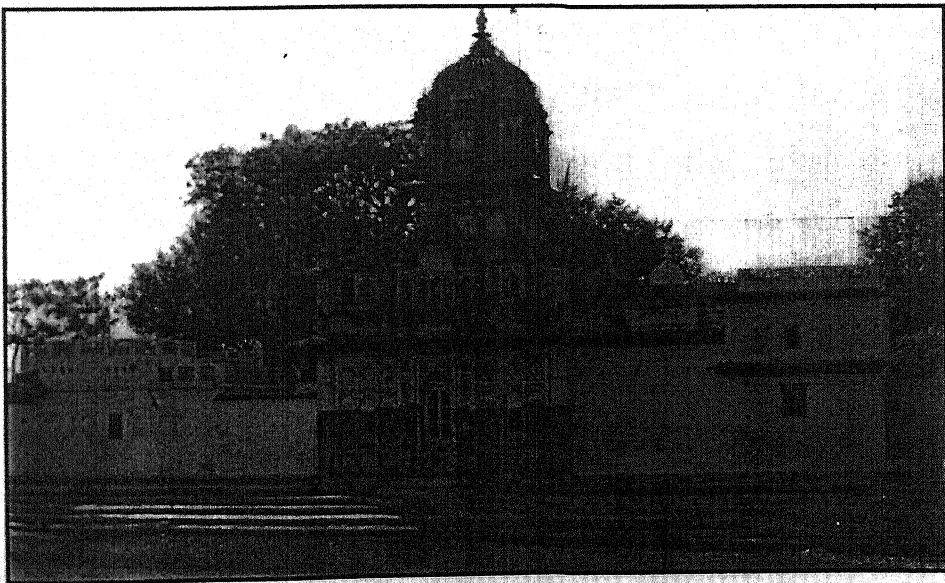
सिद्ध की बगिया का सिद्धेश्वर मन्दिर

सिद्ध की बगिया 'सिद्धेश्वर मन्दिर' में स्थापित शिवलिंग

के अर्ध्य पर बाणलिंग स्थापित है। इसके प्रदक्षिणा पथ तथा गर्भगृह वाहय छज्जों के मध्य देवी–देवताओं के सुन्दर लघु चित्र हैं जो लाल–पीले मसाले तथा रंगों से बनाये गये है। गर्भगृह की दीवार में अंदर की ओर स्थित आलों में गणेश, पार्वती, दुर्गा, भगवान विष्णु, कार्तिकेय एवं सूर्य की प्रतिमा स्थापित है। इसके बाहरी ओर कोनों पर बड़े एवं छोटे कोणाकार लघु मन्दिर निर्मित है तथा लघु मन्दिरों के बीच में पालकीनुमा तिर्यक चाप निर्मित है। इसके प्रवेश द्वार की छत पर हांथी और सिंह की मूर्ति है। इस मंदिर के पास ही एक बाग है जिसे 'सिद्ध की बगिया' के नाम से जाना जाता है।

(ii) मठ

नगर के गोसांईपुरा मोहल्ले में बड़ा मठ एवं छोटे मठ के नाम से विख्यात गोसांईयों के दो मठ है। यह दोनों मठ अब खंडहरों में परिवर्तित हो चुके है और केवल खंडहर बाकी रह गये है। छोटे मठ के प्रवेश द्वार पर गणेश की प्रतिमा विद्यमान है। अन्दर एक लघु मन्दिर में पंचमुखी शिवलिंग प्रतिष्ठित है।

वहीं बड़ा मठ सम्भवतः सैनिकों के रहने का स्थान रहा होगा। मठ के ऑगन में एक विशाल बावड़ी हैं। एक विवरण के अनुसार यहां पर कभी सैनिक रहा करते थे। इसके तीन मुख्य द्वार थे। पहला रानीमहल की ओर (वर्तमान में है) तथा दूसरा खत्रयाना मोहल्ले की ओर (यह भी अभी मौजूद है) एवं तीसरा गंज की ओर था जहां पर गोसांईयों के खेत अथवा बगीचे बगैरह हुआ करते थे। उधर मड़िया मौहल्ले में दुर्गशैली का गोसांई मठ था जो वर्तमान में अपने मूल स्वरूप को खो चुका है। इसके कुछ बुर्ज स्पष्ट संकेत करते है कि यह मठ प्राचीन काल में विशिष्ट महत्व रखता था। इस मठ के कुछ ही भाग अपने मूलरुप में है।

(iii) समाधि मन्दिर (मड़िया)

गोसांई मूलतः सन्यासी थे अतः इनके शवो को मृत्योपरान्त अग्नि संस्कार न करके उन्हें समाधिस्थ किया जाता था। इन समाधियों पर मन्दिरों को बनाकर शिवलिंग स्थापित कर दिया जाता था। इन समाधि मन्दिरों (मड़िया) का निर्माण ऊँची जगह पर निर्मित अधिष्ठान के ऊपर किया गया था। इसमें मण्डप, अन्तराल एवं गर्भगृह का समायोजन है। गर्भगृह एवं मण्डप पृथक–पृथक उत्तुंग

शिखरों से आवृत है। शिखरों के उन्नत केन्द्र आमलक, कलश मणि, चक्र एवं कमल से सुशोभित है। कतिपय समाधि मन्दिरों में इनके ऊपर त्रिशूल लगे है। दीवार एवं शिखर के मध्य टूंडों पर आधारित लघु छज्जा बनाया जाता था। टूड़ों के मध्य सुन्दर चित्र बनाये गये है। कुछ समाधि मन्दिरों के मण्डप एवं गर्भगृह में भी चित्रण है। कतिपय समाधि मन्दिरों की जगती (चबूतरों) के चारों कोनों पर लघु मन्दिर निर्मित कर उन्हें पंचायतन मन्दिर का स्वरूप दिया गया है। समाधि मन्दिरों के ऊपर सिंह द्वार तथा नन्दी मण्डप का भी समायोजन है। समाधि मन्दिरों के गर्भ गृहों में काले पत्थर के भव्य शिवलिंग तथा अन्तराल में नन्दी विराजमान है। कुछ गर्भ गृहों में शिव लिंग के अतिरिक्त अन्य देवी देवताओं की प्रतिमायें भी स्थापितकी गयी है।

दूसरे प्रकार के समाधि मन्दिर एक कक्षीय चौकोर अथवा अष्ठ–कोणीय आकार के है। इस प्रकार के समाधि मन्दिरों पर उत्तुंग शिखर नहीं होता अपितु ये गुम्बजों से सुशोभित है। इनमें भी टूड़ो के मध्य चित्रांकन किया जाता था तथा समाधि कक्ष में शिवलिंग स्थापित किये जाते थे।

झाँसी में गोसांइयों द्वारा अनेक समाधि मन्दिरों का निर्माण कराया गया। इसमें प्रमुख समाधि मन्दिर निम्न हैं।

1. मड़िया मोहल्ला के समाधि मन्दिर –

मड़िया मोहल्ला बाहर सैयर गेट स्थित समाधि मन्दिरों की संख्या बारह के लगभग है। इसमें एक विशाल समाधि मन्दिर में मूर्तियॉ है। इसमें विक्रमी सम्वत् 1857 (1800 ई0) का एक अभिलेख

लगा है। इससे ज्ञात होता है कि यह चिमनपुरी महाराज की समाधि है। इस बीजक में तत्कालीन पूना के पेशवा बाजीराव द्वारा नियुक्त झाँसी के सूबेदार शिवराम भाऊ (महारानी लक्ष्मीबाई के श्वसुर) के नाम का भी उल्ल्ख है। इसके गर्भगृह में एक शिवलिंग तथा नन्दी विराजमान है। चबूतरे के चारों ओर चार छोटे मन्दिर है। शिखर पर कलश, अधखिला कमल, चक्र और त्रिशूल लगा है। शिखर के नीचे छज्जे के नीचे चित्र बने हुये है। इसका शिखर कोणाकार है और चारों कोनों पर लघु मन्दिर हैं जो इसे पंचपतन रूप प्रदान करते है। इस मुख्य समाधि मन्दिर के सामने दोहरे शिखर वाला समाधि मंदिर है। इसके चारों कोनों पर गुंबद बने हुये है। इसके शिखर पर अध खिला कमल है और शिखर कोणाकार है। इसके अलावा यहाँ और भी समाधि मन्दिर निर्मित किये गये है।

2. सुरईयन के बाग के समाधि मंदिर –

सुभाषगंज के समीप छनियापुरा स्थित सुरईपन के बाग में गौरीशंकर एवं पंचमुखी महादेव समाधि मंदिर स्थापत्य कला एवं चित्रकला के श्रेष्ठ उदाहरण है।
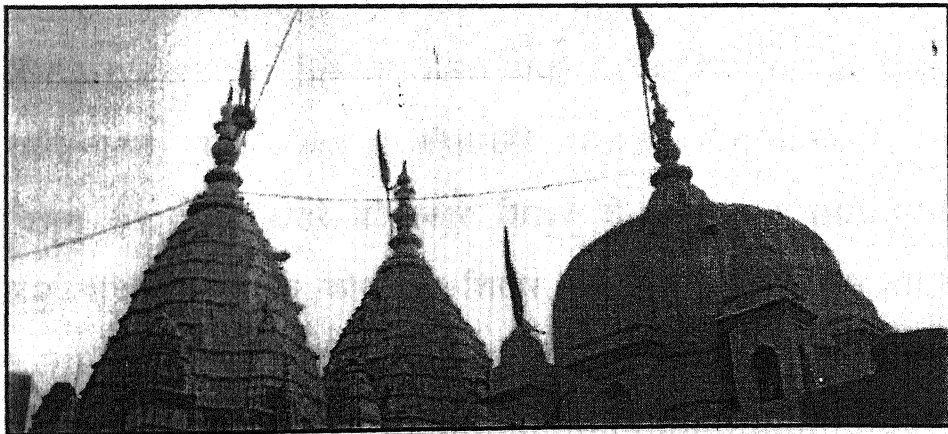
सुरईयन के बाग में स्थित गौरी शंकर एवं पंचमुखी महादेव समाधि मंदिर का शिखर
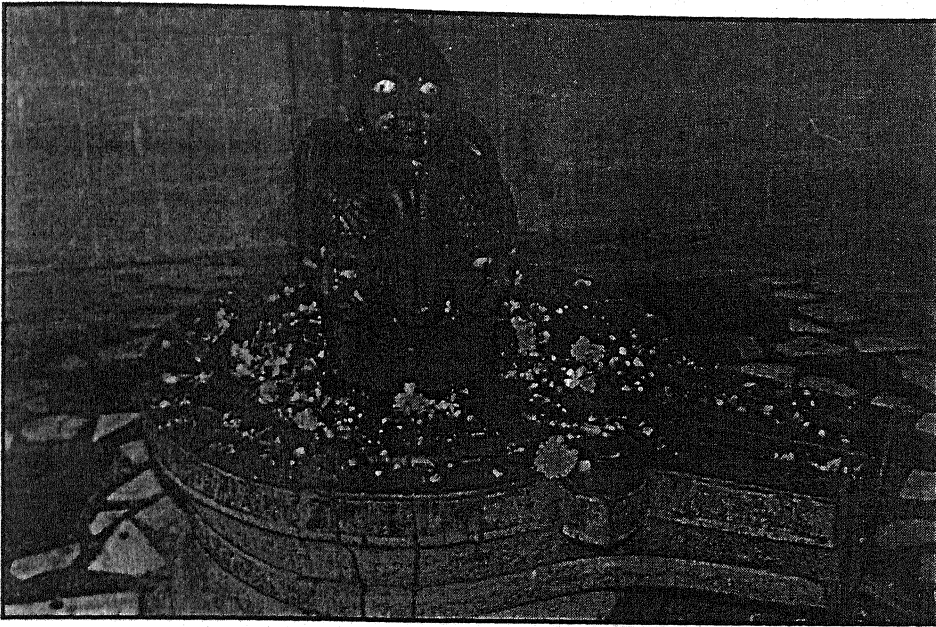
सुरईयन के बाग में स्थित पंचमुखी महादेव मंदिर में स्थापित शिवलिंग

पंचमुखी महादेव मंदिर के गर्भगृह में पंचमुखी शिवलिंग स्थापित है। इसमें प्रवेश द्वार के पूर्व में गणपति व पश्चिम में भैरव की प्रतिमा है। प्रवेश द्वार के सामने बरामदे में विशाल नंदी विराजमान है।

वहीं गौरीशंकर मंदिर दोहरे कोणाकार शिखर वाला मंदिर हैं। इसके गर्भगृह में साधारण शिवलिंग स्थापित है। गर्भगृह के बाहर ढके हुये मंडप की छत पर चित्रकारी है। इसमें लाल, हरे, काले, पीले और स्लेटी रंगों से चित्रांकन किया गया है। इसमें शेषशायी विष्णु, राधा–कृष्ण, गजों के साथ महालक्ष्मी, पालकी और जानवरों का चित्रण है। इसके दोहरे कोणाकार शिखर के चारों ओर छोटे–छोटे लघु मंदिर है। इसके कोणाकार शिखर के ऊपर गुंबद, कमल और कलश है। इसकी बाहरी दीवार पर बेलबूटों को उकेरा गया है। इसका परिक्रमा पथ बाहर है।

3. छनियापुरा के समाधि मंदिर –

सुरईयन के बाग के पास ही छनियापुरा में अन्य समाधि मंदिर निर्मित किये गये है। इनका शिखर कोणाकार है और लगे पत्थरों में शिवलिंग स्थापित है। इनकी बाहरी दीवारों पर लगे पत्थरों में बेल–बूटों को उभारा गया है।इनमें एक मंदिर दोहरे शिखर वाला है और इसकी सतह (जगती) के चारों कोनों पर चार छोट–छोटे लघु मदिर निर्मित है। यह इस समाधि मंदिर को पंचायतन रुप प्रदान करता है।
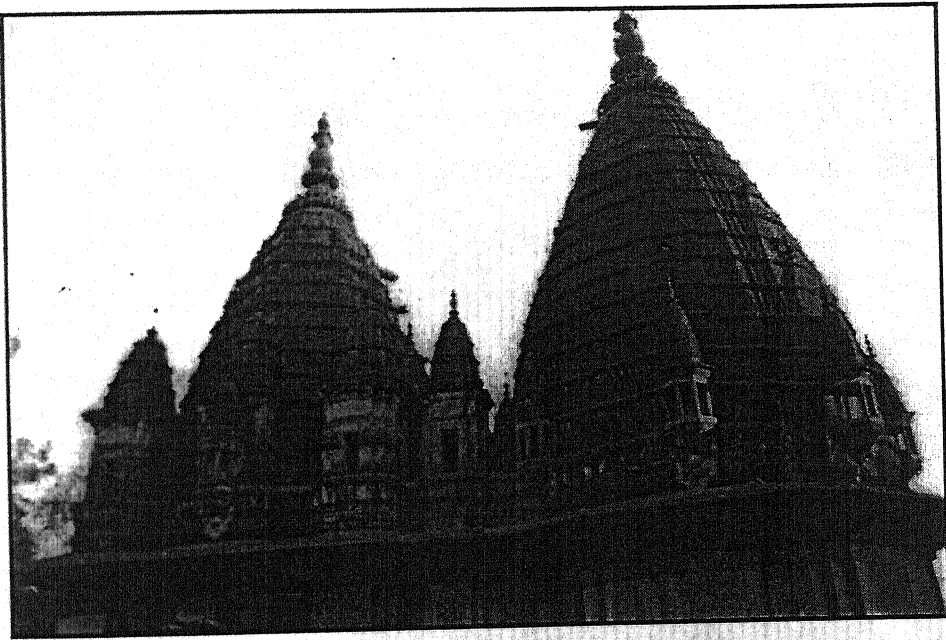
छनियापुरा स्थित एक गोसांई समाधि का शिखर भाग

4. ओरछा गेट के समाधि मन्दिर –

झाँसी स्थित ओरछा गेट अन्दर स्थित शहर पनाह (नगर परकोटे) से लगे दो समाधि मन्दिर तथा ओरछा दरवाजे बाहर, कसाई मण्डी, मदक खाना में एक समाधि मन्दिर बना है। इस समाधि

मन्दिर के आगे कभी एक चौपड़ा (तालाब) हुआ करता था। इस मन्दिर की विशेषता यह है कि इसकी बाहरी दीवारों पर भी चित्रकला है जो गोसांई की अपनी शैली थी। इसमें बुन्देली चित्रकला की स्पष्ट छाप दिखाई देती है। लाल रंगों का प्रयोग अधिक किया गया है। रंग इतने पक्के है कि वे कई सदियों बाद भी अभी तक विद्यमान है।

5. फूटा चौपड़ा के समाधि मन्दिर –

फूटा चौपड़ा अन्दर सैंयर गेट स्थित समाधि मन्दिरों की संख्या दो है। इसमें गर्भगृह में पंचमंखी शिवलिंग स्थापित है। इसकी दीवार में गणेश, विष्णु और कर्तिकेय की प्रतिमा है। इसका प्रदक्षिणा पथ बाहर है। समाधि मन्दिर के आगे भी कभी चौपड़ा हुआ करता था। इस समाधि मंदिर की जगती के चारों कोनो पर छोटे–छोटे लघु मंदिर है जो इसे पंचायतन रूप प्रदान करते हैं। यह मंदिर दोहरे शिखर वाला है और ऊपर चारों कोनों पर लघु मंदिर है।
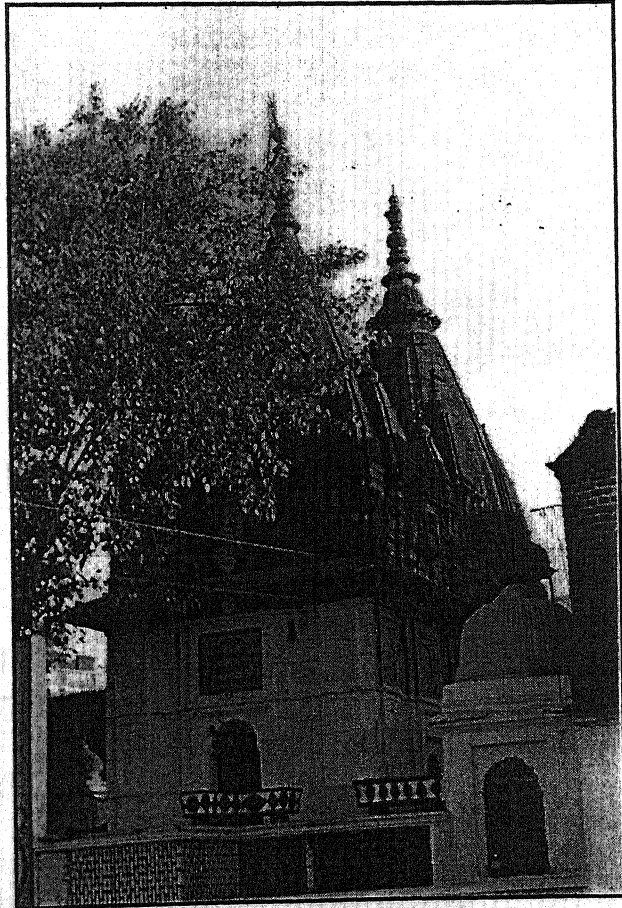
फूटा चौपड़ा के समाधि मन्दिर का बाह्य भाग

6. सुन्दर पुरी बगीचा के समाधि मंदिर –

इस बगीचे में दो समाधि मन्दर है। प्रथम समाधि मन्दिर एकक्षीय अष्टकोणीय विशाल आधार पर पंचायतन शैली में निर्मित है। दूसरा समाधि मंदिर उत्तुंग शिखर का है इनके समीप सहस्त्रलिंग शिव मंदिर है ये सभी महाकालेश्वर मन्दिर के नाम से जाना जाता है। इसका परिक्रमा पथ बाहर है और शिखर कोणाकार है। इसके चारों कोनों पर पालकीनुमा मध्य भाग है और दोनो ओर छोटे–छोटे लधु मंदिर है।
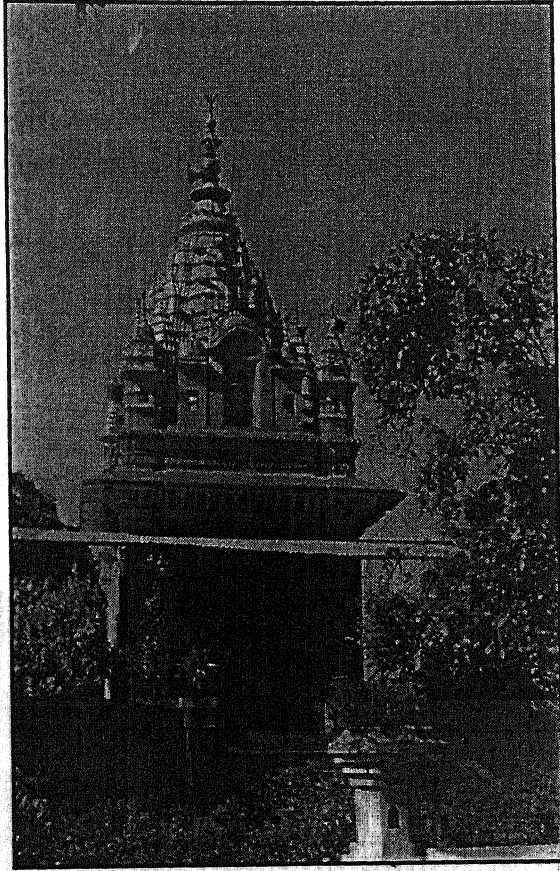
सुन्दर पुरी बगीचा का समाधि मंदिर

7. ऑतिया ताल के समाधि मन्दिर –

ऑतिया ताल के पश्चमी तट पर चार समाधि मन्दिर बने है। इनमें एक 'एक कक्षीय' समाधि मंदिर है तथा तीन का केवल चबूतरा बना है।

8. शैंगरपुरी बगीचे के समाधि मंदिर –

झाँसी–कानपुर रेल मार्ग पर गढ़मऊ से पहले पूर्व में स्थित शैंगरपुरी के बगीचे में पॉच समाधि मन्दिर स्थित है। यहॉ स्थित बावड़ी में लगे अभिलेख विक्रम सम्वत् 1838 (1781 ई0) से ज्ञात होता है कि इसका निर्माण भाण्डेर के राबोपुरी के शिष्य ने करवाया था।

उपरोक्त समाधि मंदिरों के अतिरिक्त चौधरी का बाग, माहौर का बगीचा (ग्वालियर मार्ग), पुराना ताड़ी खाना, झाँसी–कानपुर मार्ग, मेहन्दी बाग, बड़ागॉव और पिछोर में भी समाधि मन्दिर बने है।

झाँसी–कानपुर मार्ग स्थित गोसांईयों की समाधियाँ

(iv) गढ़ियाँ (लघुदुर्ग)

सन् 1742 ई0 में मराठों से आने के पूर्व राजेन्द्र गिरि की झाँसी में मड़िया मोहल्ले में स्थित एक छोटी सी गढ़ी थी। इसमें चारों ओर चार छोट–छोटे बुर्ज थे व इसमें निशाना साधने के लिये जगह–जगह छेद बने थे। इस गढ़ी के चारों ओर चहार दीवारी खिंची हुयी थी तथा इसके अन्दर ही सभी समाधि मन्दिर बने हुये थे। इस स्थान पर यह चाहर दीवारी और गढ़ी के अवशेष अभी मौजूद है।

1. मोंठ की गढ़ी –

सन् 1742ई0 में मराठों का झाँसी आगमन पर गोसांई सरदार राजेन्द्र गिरि तथा अन्य गोसांई सरदारों (जो शस्त्र धारण करते थे केवल वो ही गोसांई नागा सैनिक कहलाते थे) ने उससे संघर्ष किया। बाद में नारोशंकर से सुलह हो जाने पर उसे मोंठ की जागीर दे दी गयी। वहां पर राजेन्द्र गिरि ने अपने लिये एक गढ़ी का निर्माण करवाया था। गढ़ी में सर्वप्रथम प्रवेश सिंह द्वार है तथा गढ़ी
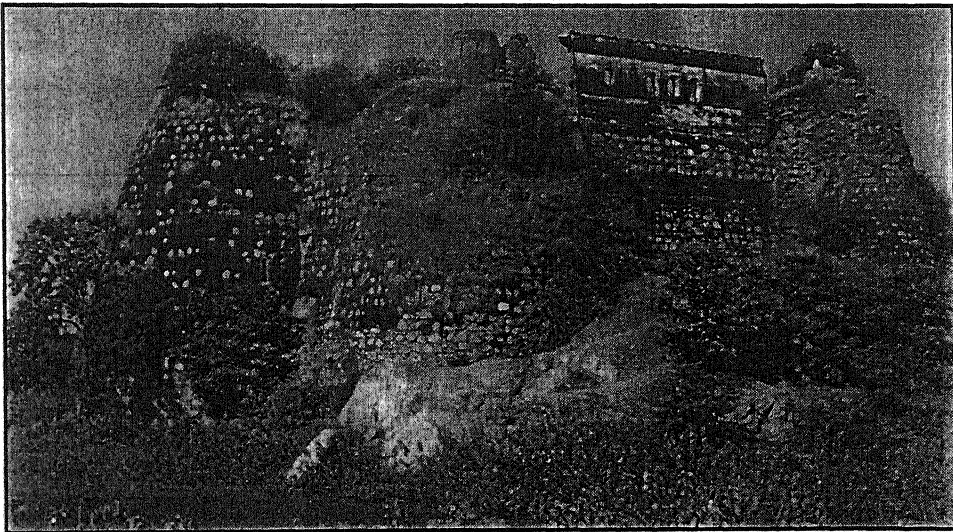
राजेन्द्र गिरि गोसांई द्वारा 1745 ई. में बनवायी मोठ की गढ़ी

के चारों ओर खाई खुदी है। खंदक के बाद एक बड़ा एवं चार छोटे बुर्ज बने है।

2. अमरा की गढ़ी –

अमरा जिसका पूर्व नाम अमरागढ़ था। सन् 1750 ई0 के लगभग राजेन्द्र गिरि ने इस पर अधिकार किया था। उस समय उसने एक
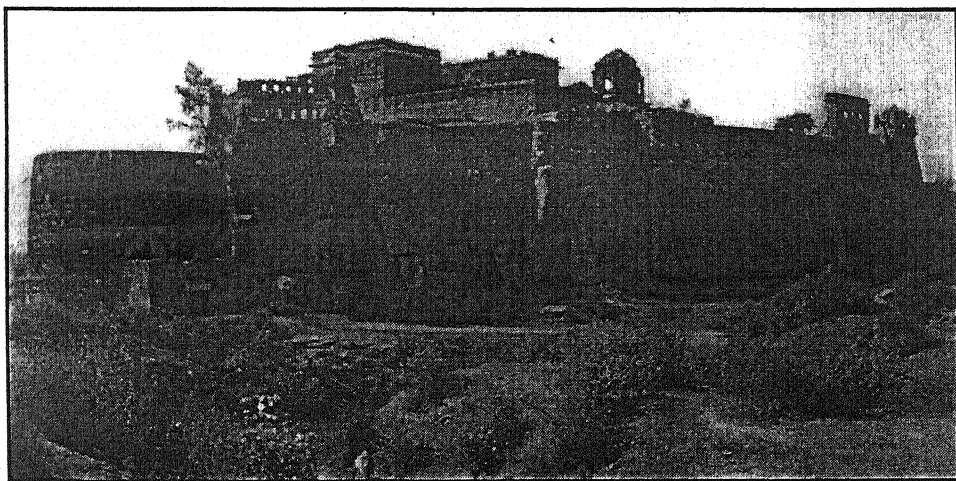
अमरा की गढ़ी का भीतरी भाग

विशाल गढ़ी (लघु दुर्ग) का निर्माण करवाया था जो नागा सैनिकों की छावनी के काम आता था। इसका उपयोग अधिक दिनों तक न हो पाया। समकालीन मराठा गवर्नर नारो शंकर ने नागाओं की बढ़ती शक्ति से चिंतित होकर इस पर अधिकार कर लिया। अमरा झाँसी–कानपुर राजमार्ग पर चिरगाँव और मोंठ के बीच में स्थित है।

3. कुम्हर्रा की गढ़ी –

झाँसी के दक्षिण में भट्टागाँव के पास मध्य प्रदेश की सीमा पर कुम्हर्रा गाँव में एक गोसांई की गढ़ी के अवशेष, खंडहर रूप में आज भी विद्यमान है। इसके अतिक्ति यहां पर चार समाधि मन्दिर भी है। यह झाँसी–ओरछा के प्राचीन मार्ग पर स्थित है।
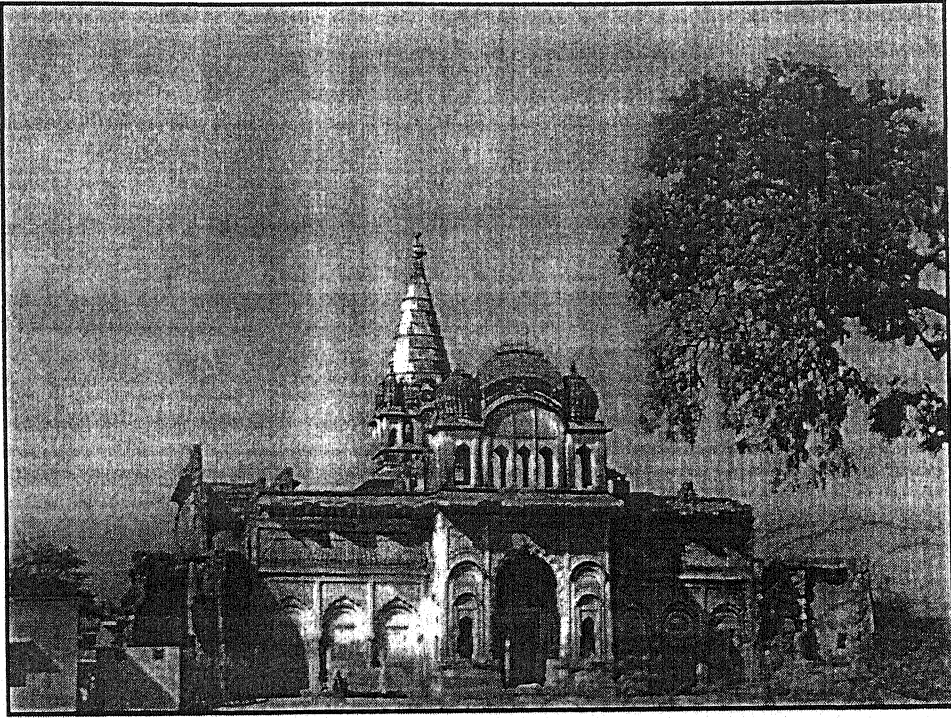
अमरा की गढ़ी के सामने स्थित अदालत (थाना) का बाह्य दृश्य

अमरा की गढ़ी का मुख्य प्रवेश द्वार

(ब) सांस्कृतिक गतिविधियाँ

गोसांइयों के शासन काल में स्थापत्य कला का अभूतपूर्व विकास हुआ। इनके समय चित्रकला का भी विकास हुआ। गोसांइयों द्वारा बनवाये गये स्मारकों, मठ, मन्दिर तथा समाधियों में किये गये चित्रांकन से गोसांईयों की चित्रकला तथा स्थापित मूर्तियों से मूर्तिकला पर प्रकाश डाला जा सकता है।

चित्रकला

गोसांई शासकों द्वारा निर्मित स्मारकों में चित्रांकन किया गया है। झांसी स्थित गोसांइयों के मन्दिरों में ये चित्र बने हुये है।[1] इन चित्रों में मानव मुखमंडल का अंकन एक चश्म तथा पौने दो चश्म चेहरा बनाकर किया गया।[2] इन चित्रों में पुरूषों को पगड़ियां पहने
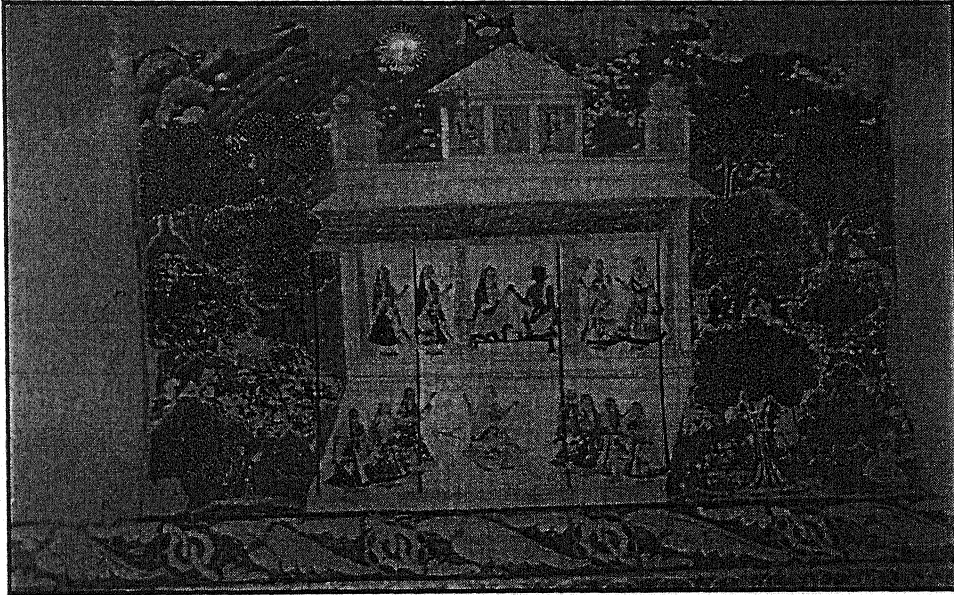
अमरा की गढ़ी के अन्दर की दीवार पर चित्रकला

---

1. त्रिवेदी, एस.डी.; बुन्देलखण्ड का पुरातत्व (झांसी–1984) पृष्ठ –66
2. पांडेय, रूद्रनारायण; झांसी (ग्वालियर, 1990) पृष्ठ 71

हुए दिखाया गया है तथा लहंगा, ओढ़नी व छोटी बाहों की चोली स्त्रियों के परिधान थे। चित्रों में स्त्रियां बाजूबंद, कंकण, चूड़ा, हथफूल, हाथ एवं पैरों में पैजन तथा पायलों से सुशोभित हैं। गोसांई स्मारकों की छतरियों में छज्जों के टूंडों के मध्य छिलाई
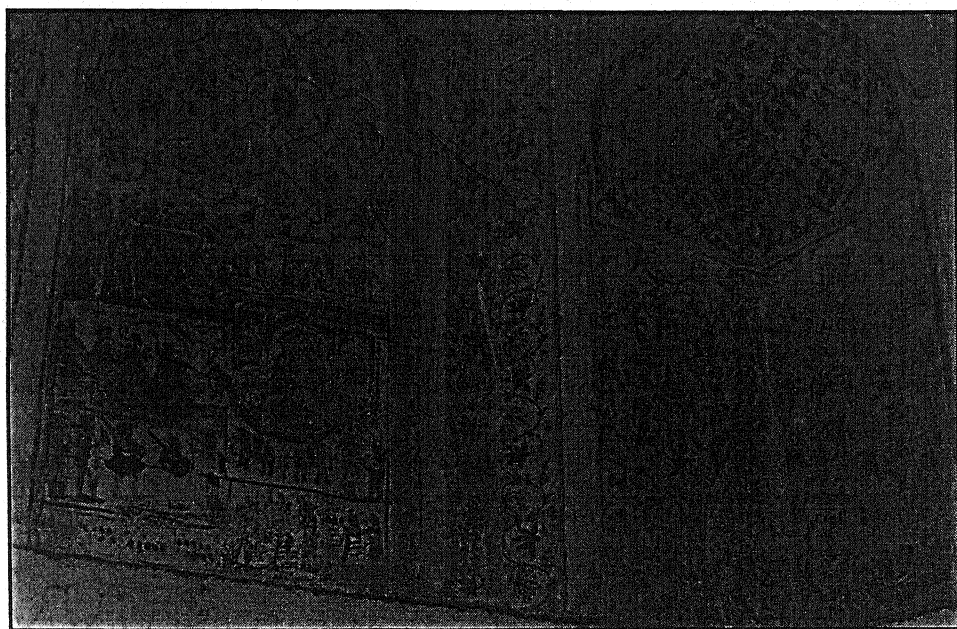
छनियापुरा स्थित गौरी शंकर मन्दिर के मण्डप पर गोसांई कालीन चित्रकला

द्वारा चित्र बनाये गये हैं। इनकी सतह पर प्लास्टर किया गया तथा इसके ऊपर पुनः हिरमिजी मिला हुआ प्लास्टर किया गया। उसके बाद मनचाहे रंग को छीलकर इसे उभारा गया। सुगंधपुरी बगीचा के समाधि मन्दिरों में बाह्य दीवार पर चूने के प्लास्टर को काटकर चित्रकारी उत्कीर्ण की गयी।

इसके अलावा कुछ स्थानों पर स्मारकों की चिकनी सतह पर तूलिका से चित्रांकन किया गया।

गोसांइयों के कई समाधि मन्दिरों में धार्मिक चित्रांकन किया गया है। पानी वाली धर्मशाला तथा सुरईयन के बाग के गौरी शंकर

मंदिर में राधाकृष्ण की लीला का बड़े सुंदर ढंग से चित्रांकन है। इसमें लाल, हरे, पीले, काले और स्लेटी रंगों से चित्रांकन किया गया है। इसके अलावा इस मंदिर की भीतरी दीवार में शेषशायी विष्णु, गजलक्ष्मी, महिषासुर मर्दिनी और युद्ध का वर्णन है।

पानी वाली धर्मशाला के शिव मंदिर की चित्रकारी

कुछ समाधि मन्दिरों में शिकार के दृश्य का चित्रांकन है। वही पिछोर ग्राम के एक कक्षीय गोसांई समाधि मन्दिर में चक्की चलाती स्त्री और रीछ सहित मदारी का चित्रांकन किया गया है। इसमें ऊँट, गज तथा अश्व के सुन्दर रेखाचित्र चित्रित किये गये हैं। अमरा के किले में तूलिका से चित्रांकन किया गया है। इसमें हरे, लाल और स्लेटी रंगों से राधा–कृष्ण की रासलीला का वर्णन है।

मूर्तिकला

गोसांई शासक शैव अनुयायी थे अतः इनके समय शिवोपासना लोकप्रिय रही। इनके मन्दिरों में सहस्रलिगेश्वर की मूर्ति के अलावा वाणलिंग, पंचमुखी शिवलिंग तथा पंचवृत्तलिंग, स्थापित किये गये। शिवपुराण में वर्णित भगवान शिव के सहस्र नामों कें अनुरूप मूर्ति शिल्प में एक बड़ें शिवलिंग पर एक सहस्र (एक हजार) लघुलिंग उत्कीर्ण करने की परम्परा इस क्षेत्र में प्राचीनकाल से ही विद्यमान थी।

पानी वाली धर्मशाला, दीक्षित बाग एवं सुन्दरपुरी के बगीचे में स्थित शिव मन्दिरों में इस प्रकार के सहस्र लिंग स्थापित है। इसके अलावा दीक्षित बाग में स्थापित पंचवृत्त लिंग को मूर्तिकला का नया प्रयोग माना गया। इसके अलावा अनेक गोसांई मन्दिरों तथा समाधियों में शेषशायी विष्णु, गणेश, कार्तिकेय, सूर्य, चन्द्र, महिषासुर मर्दिनी और दशावतार की मूर्तियां स्थापित है।

फूटाचौपड़ा स्थित पंच मुखी महादेव मंदिर का पंच मुखी शिवलिंग

इससे स्पष्ट होता है कि गोसांइयों के शासनकाल में इस क्षेत्र में स्थापत्य कला, चित्रकला एवं मूर्तिकला का अभूतपूर्व विकास हुआ। इसके अलावा इनके शासनकाल में साहित्यिक गतिविधियों का भी विकास हुआ। हिन्दी के प्रसिद्ध कवि पद्‌माकर गोसांई शासक अनूप गिरि "हिम्मत बहादुर" के दरबारी कवि थे। इसके अलावा और भी कवि व लेखक हुये।
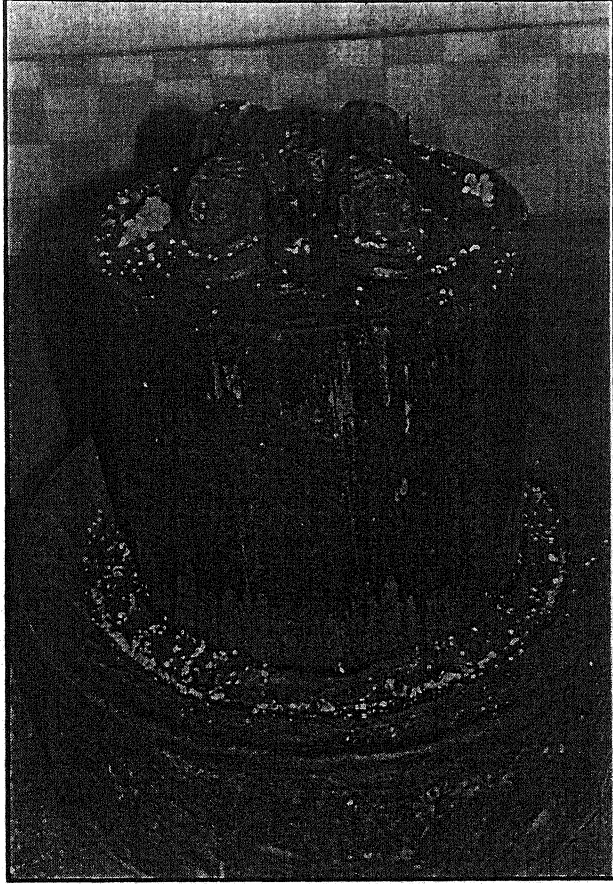
दीक्षितबाग में गोसांईयों के मंदिर में स्थापित पंचावृत्त शिवलिंग

उपसंहार

उपसंहार

बुन्देलखंड में गोसांई सत्ता का उदय तथा पतन इस क्षेत्र के इतिहास की एक गौरवमयी गाथा है। उत्तर मुगलकालीन बुन्देलखंड में यह एक ऐसी, राजनैतिक शक्ति के रूप में उदयी हुयी जिसनें अपनी कूटनीति, अदम्य साहस एवं सूझ–बूझ से बुन्देलखंड में स्वयं के लिये एक राज्य प्राप्त तो कर लिया परन्तु अपनी सत्ता स्थिर नहीं रख सके। गोसांइयों ने बुन्देलखंड में अनेकों राजवंशों को आगे बढ़ाया तथा उनकी सहायता कर शासन की स्थापना करवायी। समय–समय पर इनकी वफादारी बदलती रहीं।

गोसांइयों का राजनैतिक शक्ति के रूप में उदय बुन्देलखंड में मराठों के आगमन के साथ होता है। गोसांई सत्ता के राजनैतिक उदय के बारे में कहा जाता है कि 18वीं शताब्दी के पूर्वाद्व में बुन्देलखंड अनेकों प्राकृतिक आपदाओं से प्रभावित होने के कारण यहां की अर्थव्यवस्था जर्जर हो चुकी थी। इस क्षेत्र के लोग गरीबी एवं भुखमरी से परेशान थे। इन्हीं परिस्थितियों के चलते इस क्षेत्र में धार्मिक संगठनों से जुड़े तमाम साधू–सन्यासियों ने अपनी जीविकोपार्जन के लिये स्वयं को सशस्त्र सैनिक के रूप में परिवर्तित कर लिया।[1] प्रवृत्ति से साधु–सन्यासी होने के कारण यह लोग नागा वेशभूषा में रहते थे। इनके बाल लंबे रहते थे तथा शरीर पर राख मली होती थी।[2] यह नागा सैनिक युद्व शैली में बेहद आक्रमक होते थे। यह राजा–महाराजाओं से धन लेकर उनकी ओर से युद्व में शामिल होते थे।

---

1. ओरिएन्ट मिसलेनी, लंदन 1992, वाल्यूम–4 पृष्ठ–49, 50
2. विलियम इर्विन; द आर्मी आफ द इंडियन मुगल, पृष्ठ–164

मराठों द्वारा नियुक्त झॉसी के गवर्नर नारोशंकर केसमय राजेन्द्र गिरि नगर के दुर्गाध्यक्ष (किलेदार) थे। नारोशंकर नें 1742 ई. में आते ही राजेन्द्र गिरि को मोंठ की जागीर देकर उससे झुटकारा पाया। राजेन्द्र गिरि गोसांई ने स्वयं को 1745 ईस्वी में ''बुन्देलखंड का राजा'' घोषित कर मराठों को चुनौती दी। बाद में 1750 ई0 में नाराशंकर द्वारा मोंठ पर आक्रमण करने पर वह भागकर अवध के नवाब सफदरजंग की

सेवा में पहुॅच गया। उसकी शूरवीरता एवं वफादारी देखते हुये सफदरजंग ने राजेन्द्र गिरि को अपनी सेना का मुख्य कमांडर (सेनानायक) बना दिया। राजेन्द्र गिरि ने अपनी गोसांई सैनिकों की नागा पलटन के साथ 1751 ई. के प्रथम पठान युद्व में एवं 1752 ई. के द्वितीय पठान युद्व सहित यमुनापार के फौजदार बल्लू जाट के आतंक दबाने में प्रमुख भूमिका का निर्वाह किया।[1] इमादुल्मुल्क से युद्व में 14 जून 1753 ई. में उसकी मृत्यु हो गयी। इस प्रकार राजेन्द्र गिरि गोसांई अपने स्वामी के लिये प्राणों की बाजी देने वाला एक बफादार सेनापति तथा वीर सैनिक साबित हुआ।

राजेन्द्र गिरि गोसांई ने कुलपहाड़ के एक सनाड्य ब्राहम्ण महिल से उसके दो पुत्रों को इसलिये प्राप्त कर लिया था क्यांकि गरीबी से तंग आकर वह बुढ़िया उनका पालन–पोषण नहीं कर पा रहीं थी।[2] राजेन्द्र गिरि ने इन्हें अपना चेला बना लिया और बाल्यकाल से ही सैनिक प्रशिक्षण दिया। युवा होने पर यह दोनो

---

1. श्रीवास्तव ए. एल; अवध के प्रथम दो नबाब पृष्ठ–177
2. पद्माकर; हिम्मत बहादुर बिरदाबली, वाराणसी 1903 (संपादक–भगवानदीन) पृष्ठ–19

भाई अवध के नवाब की सेना में भर्ती हो गये और अपने गुरू राजेन्द्र गिरि के साथ युद्वों में भाग लिया। इसमें अनूप गिरि वड़ा शूरवीर था। उसने शुजाउद्दौला के लिये 1759 ईस्वीं में शुक्रताल, 1761 ईस्वी में पानीपत एवं 1764 ईस्वी में बक्सर का युद्व लड़ा। बक्सर के युद्व में अनूपगिरि ने अत्यंत साहस का परिचय देते हुये शुजाउदृदौला के प्राणों की रक्षा की।

अनूपगिरि गोसांई की इस बहादुरी से प्रभावित होकर शुजाउद्दौला ने उसे "हिम्मत बहादुर" की पदवी प्रदान की। अनूप गिरि "हिम्मत बहादुर" का जन्म एवं पालन–पोषण बुन्देलखंड में ही हुआ था। वह यहाँ की ऊबड़–खाबड़ भूमि तथा जंगली व पहाड़ी क्षेत्र के भूगोल से भली–भांति परिचित था।

सही अर्थो में "धरती पुत्र" होने के कारण उसकी यह तीब्र इच्छा थी कि बुन्देलखंड में अपने लिये वह एक स्वतंत्र राज्य स्थापित कर सके। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उसने अवध के नवाब शुजाउद्दौला की सेना में प्रवेश किया। बुन्देलखंड में अपने लिये एक पृथक राज्य की प्रबल इच्छा हिम्मत बहादुर के अंदर थी इसलिये उसने 1762 ईस्वी में बुन्देलखंड पर चढ़ाई की तथा मोंठ एवं उसके आस–पास के ससूबों पर अपना अधिकार कर लिया।[1] राजा हिन्दूपत से हार एवं बक्सर के युद्व में पराजय के बाद हिम्मत बहादुर अवध के नवाब शुजाउद्दौला का साथ छोड़कर भरतपुर के राज जवाहर सिंह जाट और फिर रघुनाथ दादा की सेवा में चला गया।

---

1. श्रीवास्तव ए. एल; शुजाउद्दौला भाग–1, पृष्ठ–122

हिम्मत बहादुर कभी भी किसी एक पक्ष के साथ नहीं रहा। इसलिये यह कहना उचित होगा कि वह हमेशा दो नावों पर पैर रखता था और अंत में विजेता पक्ष के साथ हो जाता था। अनूपगिरि गोसांई "हिम्मत बहादुर" ने समय–समय पर अनेकशासकों का साथ दिया किन्तु जिसके हांथ बाजी लगने वाली होती थी, अन्त में वह उसी के साथ हो जाता था।

रघुनाथ दादा के साथ एक वर्ष रहने के बाद 1767 ईस्वी में हिम्मत बहादुर पुनः वापस शुजाउद्दौला की सेवा में चला गया। उसने एक बार फिर 1774 ईस्वी में झांसी पर हमला किया परन्तु जनवरी 1775 ई. में नवाब शुजाउद्दौला की मृत्यु के कारण उसे अभियान अधूरा छोड़ना पड़ा। शुजाउद्दौला के बाद उसके पुत्र असफउद्दौला ने राजकीय खर्चों में कमी करने के बहाने गोसांई बंधुओं को अपनी सेवा से निकाल दिया। बेकार हो जाने के बाद भी हिम्मत बहादुर ने कभी हिम्मत नहीं हारी और 1776 ईस्वी में वह डींग के घेरे में नजफ खां से मिला तथा लगभग 8 वर्षो तक उसका कृपापात्र बना रहा। नजफ खा़ु की मृत्यु के बाद कुछ समय तक वह उसके पुत्र अफरसियाब के साथ रहा परन्तु बाद में मराठा सरदार महाज ही सिंधिय से जुड़ गया।

उत्तर मुगलकालीन शासन में महादजी सिंधिया एक महत्वपूर्ण राजनैतिक शक्ति के रूप में उभरे थे जो मुगलों की नष्ट होती सत्ता को समाप्त कर दिल्ली पर अधिकार जमाना चाहते थे। महाद जी सिंधिया की इस राजनैतिक महात्वकांक्षा को अनूपगिरि ने भांप लिया था।महाद जी को भी उसकी आवश्यकता थी इसलिये सिंधिया ने उसकों अपनी सेवा में ले लिया।

कुछ ही समय बाद घटनाओं का क्रम इस तरह परिवर्तित हुआ कि महादजी सिंधिया को हिम्मत बहादुर द्वारा अपने विरूद्व रचे जा रहे षणयत्रों की जानकारी हो गयी। महादजी ने गोसांई बंधुओं को दी गयी बीस लाख रूपये की जागीरें वापस करने को कहा और बाद में हिम्मत बहादुर का राजनैतिक कद छोटा करते हुये फरवरी 1786 ईस्वी में उसे मोंठ एवं वृंदावन की जागीर इस शर्त के साथ दी कि उसे सेना का खर्च स्वयं चलाना होगा तथा सन्यासी की भांति वृंदावन में रहना पड़ेगा। हिम्मत बहादुर इससे संतुष्ट नहीं हुआ क्योंकि उसकी इच्छा अपने लिये एक पृथक राज्य निर्माण करने की थी। मौका पाकर हिम्मत बहादुर बांदा के नवाब अली बहादुर से जा मिला।

अली बहादुर बाजीराव पेशवा एवं मस्तानी बाई से उत्पन्न पुत्र शमशेर बहादुर की संतान था। 1787 ईस्वी में महाद जी सिंधिया की राजपूताने में हुयी पराजय से चिंतित पेशवा ने 1788 ईस्वी में मराठों की एक सेना अली बहादुर तथा तुको जी होल्कर के नेतृत्व में उत्तर की ओर भेजी। बुन्देलखंड अभ्यिान के दौरान उसकी भेंट हिम्मत बहादुर से हुयी। धीर–धीरे हिम्मत बहादुर उसका प्रमुख सलाहकार एवं सहायक बन गया।[1] हिम्मत बहादुर ने अपने उद्‌देश्य की प्राप्ति के लिये अली बहादुर से समझौता कर लिया। दोनों में यह तय हुआ था कि वे मिलकर सम्पूर्ण बुन्देलखंड पर विजय के लिये अभियान चलायेंगे और फिर प्राप्त राज्यों को आधा–आधा बांट लेंगे।

---

1. मगरवी इलियास, तबारीरवे बुन्देलखण्ड, पृष्ठ–163

बुन्देलखंड अभियान की शुरूआत में ही हिम्मत बहादर ने अली बहादुर केसाथ मिलकर दतिया ओरछा एवं समथर के राजाओं को विजित कर उनसे चौथ वसूली। इन दानोंकी सयुक्त सेना ने अजयगढ़, बांदा, बरोंधा, मौदहा एवं दुर्गाताल के युद्व में सफलतायें प्राप्त की। कलिंजर अभियान के दौरान अली बहादुर की मृत्यु के बाद कुछ समय तक तो वह उसके उत्तराधिकारियों की सेवा में रहा परन्तु बाद में अंग्रजों के साथ हो गया। हिम्मत बहादुर गोसांई की अंग्रेजों से मित्रता ने इस क्षेत्र का एक नया इतिहास रच दिया।

बेसिन की संधि के बाद 4 दिंसबर 1803 को शाहपुर में हिम्मत बहादुर की अंग्रेजों से हुयी संधि ने बुन्देलखंड में अंग्रेजों के प्रवेश के द्वार खोल दिये। हिम्मत बहादुर ने जो शर्तें अंग्रेजों के सामने रखीं उन्होंनें सभी मान ली। संधि के अनुसार अंग्रेजों ने हिम्मत बहादुर से राजा के समान वर्ताव करने की प्रतिज्ञा की। उन्होंने हिम्मत बहादुर के भाई उमरावगिरि को अवध के नवाब के बंधन से मुक्त कराने का वचन दिया तथा हिम्मत बहादुर को "सिंकदरा" एवं "बिंदकी" परगने दिये तथा बुन्देलखंड में एक लाख रूपये की जागीर प्रदान की। अंग्रेजों ने हिम्मत बहादुर की सहायता और वीरता से प्रभावित होकर उसे "महाराजा बहादुर" की पदवी प्रदान की।

अंगेजों के दृष्टिकोण के अनुसार अनूप गिरि गोसांई से उनकी जो संधि 1803 ईस्वी में हुयी थी अत्यन्त महत्वपूर्ण थी। अंग्रेज अधिकारी यह भली भांति समझते थे कि बुन्देलखंड भारत के ह्रदय (मध्य) में स्थित है और सामरिक दृष्टि से इसका अत्यन्त महात्व है क्योंकि इस क्षेत्र पर नियंत्रण रखकर अंग्रेजी सेना को भारत के किसी भी भाग में आसानी से भेजा जा सकता था। इसके अतिरिक्त

हिम्मत बहादुर से संधि करके अंग्रेजों ने बुन्देलखंड 1803 और 1805 के मध्य हुये आंग्ल–मराठा युद्व से उसे वंचित रखा।

ऐसा प्रतीत होता है कि अंगेजी राजनीतिज्ञों ने गोसाइयों की बहादुरी से प्रभावित होने के कारण भी हिम्मत बहादुर से यह संधि की होगी।सन्यासी वेशभूषा में सुसज्जित ये नागा सैनिक अपनी वीरता के लिये प्रसिद्व रहे है। कंपनी शासन के प्रारंभिक वर्षो में बंगाल में ऐसे सन्यासी सैनिकों से अंग्रेजो को काफी समय तक जूझना पड़ था।[1] सन्यासी विद्रोह के समय अंग्रेजी सैनिकों से जो मुठभेड सन्यासियों की हुयी थी उसका आंखों देखा वर्णन जेम्स रिनेल ने फरवरी 1766 ईस्वी में दिया था।[2]

इस आशय का एक पत्र अपने एक मित्र को इंग्लैड में लिखा था जिसमें इस घटना का विस्तृत वर्णन है। रिनेल ईस्ट इंडिया कंपनी का नक्शानवीस था। उसकी मुठभेड 700 ऐसे सशस्त्र सन्यासियों के गिरोह से हुयी थी जो फरवरी 1766 ई. में अंग्रेजी सैनिकों से मार्चा लिये हुयेथे। ये सशस्त्र सन्यासी उत्तरी बंगाल में आंतक का पार्याय हुये थे। उसी समय रिनेल ने अपनी घुड़सवार सैनिक टुकड़ी के साथ इन सन्यासिंयों का मुकाबला किया किन्तु शत्रु की सेना के प्रहार से वह न केवल घिर गया बल्कि बुरी तरह से घायल भी हो गया। उसने अपने पत्र में यह भी उल्लेख किया है कि इस घटना के कई महीनों बाद भी वह अपने जख्मों से छुटकारा नहीं पा सका है। रिनेल इस घटना का वर्णन करते हुए यह संकेत दिया किया कि

---

1. बैली सी. ए; द ब्रिटिश एम्पायर एंड द वर्ल्ड (1780–1830)
2. बैली सी. ए; (वही) एवं एल्वी सीमा; ट्रेडीशन एंड ट्राजीशन इन नार्दन इंडियन (1770–1830) दिल्ली 1995

"भाग्यवशं" वह किसी तरह से बच गया। उसके बचाने में कई अंग्रज सैनिकों की जाने भी गयी। साधुओं या सशस्त्र नागा सैनिकों का झुंड युद्व कला में प्रवीण होता था। निःसदेह कंपनी के राजनैतिक सलाहकारों और कूटनीतिज्ञो ने बुन्देलखंड में अपनी विजय सुनिश्चित करने के लिये इन बहादुर नागा सैनिकों के प्रमुख अनूप गिरि गोसांई (हिम्मत बहादुर) से उनकी बहादुरी का लाभ लेने के लिये समझौता किया।

हिम्मत बहादुर गोसांई की जनवरी 1804 में मृत्यु हो गयी। उसके बाद उसका पुत्र नरेन्द्र गिरि उसकी जागीरों का स्वामी बना और संरक्षक के रूप में उसके भाई उमराव गिरि ने राज्य की बागडोर संम्भाली। हिम्मत बहादुर की विधवां पत्नी को भी जागीर मिली। इसके बाद 1830 ईस्वी में उसकी विधवा पत्नी तथा 1804 ईस्वी में नरेन्द्र गिरि की मृत्यु के बाद हिम्मत बहादुर के राज्य की सभी जागीरें कंपनी राज्य में मिला ली गयी तथा उसके भाई उमराव गिरि एवं पुत्र कंचन गिरि को अंग्रेजो द्वारा पेंशन देना नियत कर दिया। बाद में इनकी मृत्यु होने के बाद गोसांई साम्राज्य का अस्तित्व लगभग समाप्त हो गया।

बुन्देलखंड में गोसांइयों ने अपनी निवास हेतु गढ़ी (लघु दुर्ग) एवं मठों का निर्माण कराया तथा पूजा–अर्चना हेतु मंदिरों का निर्माण करवाया। मूलतः गोसांई सन्यासी थे अतः मृत्यु के उपरान्त अनके शवों का अग्नि संस्कार न कर उन्हें समाधिस्थ किया जाता था। इनकी समाधियों के ऊपर मंदिर बनाकर उनमें शिवलिग स्थापित किया जाता था। झांसी और उसके आस–पास इस प्रकार की कई समाधियां निर्मित है जो गोसांई शासकों एवं उनके नायकों की है।

मोंठ एवं अमरा की गढी आज भी बुन्देलखंड में गोसांइयों अधिपत्य का प्रमाण है।

निर्माण शैली में गुसाईयों के इन मन्दिरों व समाधियों की परम्परा में खजुराहों की चंदेलकालीन तथा बुन्देली और मराठा वास्तुकाला के दर्शन होते है। अठारहवीं शताब्दी के पूवार्द्व से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्व तक के लगभग एक सौ वर्षो के लम्बे अन्तराल में गुसांई राजा इन्द्रगिरि (राजेन्द्र गिरि) एवं अनूपगिरि (हिम्मत बहादुर) के अतिरिक्त निहंगों (बीतरागी सन्यासियों अथवा नागाओं) के नाम पर पुरियों और गिरियों द्वारा इन मन्दिरों और स्मारकों का निर्माण हुआ। कहीं–कहीं पर इन मन्दिरों के साथ घाटी से युक्त तालाबों, बवड़ियों और कुओं का निर्माण भी हुआ, जो उनकी जनहित एवं धार्मिक भावना के द्योतक स्वरूप है।

गुंसाई लोग चाहे राजा रहे हों अथवा निहंग रहे हो सभी हिन्दू धर्म के पुनरूद्वारक शंकराचार्य के शिष्य रूप में शैव अनुयायी रहे अतः उन्होंने शैव–मन्दिरों का ही निर्माण कराया। कुछ निहंगों की समाधिया जो मन्दिर के प्रारूप में निर्मित हुई, के गर्भगृहों में बाद में उनके अनुयायियों द्वारा शिवलिंगों, चतुर्मुखी अथवा पंचमुखी मानस शिवलिंगों की प्रतिष्ठा कराई। कहीं–कहीं मन्दिरों में सहस्त्र लिंगेश्वर के नाम पर विशाल शिवलिंग भी प्रतिष्ठित है। इस प्रकार उर्ध्व भाग में ग्यारह पड़ी हुई रेखायें होती है, जो शिव के ही एक रूप रूद्र के नाम पर एकादश रूद्र की प्रतीक स्वरूप है। प्रत्येक पड़ी रेखा में एक सौ अथवा एक सौ आठ छोटे शिवलिंग उत्कीर्ण रहते है। वैसे प्रत्येक शिव लिंग के तीन भाग मान गये है। जो भाग भूमिगत रहता है वह

ब्रहा भाग बीच चला विष्णु भाग तथा ऊपर वाला बेलनाकार भाग शिव भाग कहलाता है।

झांसी में प्राचीन मन्दिरों के नाम पर केवल 12 वीं शताब्दी के अन्तिम वर्षो में निर्मित चन्देलकालीन लहर की देवी तथा कैमासिन अर्थात कामक्षि देवी के मनिदरों को छोड़कर अधिकांशतः मन्दिर गुसांईयों द्वारा निर्मित शैव मन्दिर एवं उनकी समाधियां ही हैं। खुजुराहों मन्दिरो की भांति अधिकांशतः मन्दिर ऊंचे प्रतिष्ठानों पर ही निर्मित है।

मन्दिरो के गर्भगृह के अतिरिक्त आयताकार अन्तराल तथा कहीं–कहीं मण्डप एवं प्रदक्षिणा पथ की व्यवस्था हुई हैं। मन्दिरों के गर्भगृह अधिकांशतः वर्गाकार एवं अष्ट भुजाकार रूप में हैं तथा मन्दिर का बाहा भाग उरूश्रृगों से युक्त कोणाकार स्तूपाकार तथा घंटाकृति रूप में आठों दिशाओं में छोटे–छोटे मन्दिरों से शोभायमान है। कुछ मन्दिरों की पंचायतन शैली के रूप में अधिष्ठापन पर चार कोनों पर चार लघु मन्रिों की परम्परा रहीं है। पर कही–कहीं सामने की ओर ही दो लघु मन्रिों का निर्माण हुआ हैं।

मन्दिर के शिखर भाग बीजपूरक, बडे व छोटे आमलकों, चन्द्रिकाओं तथा कलश आदि आवश्यक अंगों से परिपूर्ण है। सैयंर दरवाजा बाहर मड़ियों के मंदिर दूर है खजुराहों मंदिर जैसे दिखते है। यह मंदिर एक ऊँचे अधिष्ठान पर पंचापतन शैली में गर्भगृह, आयताकार, छोटे से अंतराल एवं मंडप से युक्त दो कोणीय स्तूपाकार शिखरों से शोभायमान है। प्रदक्षिणा पथ बाहर से है इन समाधियों एवं मन्दिर के बाहय छज्जों के नीचे बनी हुयी टूडों के मध्य में

विविध प्रकार के आलेखों का उत्कीर्णन किया गया है। इसके और अमरा की बढ़ी की भित्तियों व छत पर धार्मिक आखनों पर आधारित श्रेष्ठ व कलापूर्ण रंगीन चित्र बने हुये है। ये बुन्देलखंड की चित्रकला के स्वर्णिम अध्याय है। इसके अलावा गोसांइयों के शासनकाल में मूर्तिकला का भी अभूतपूर्व विकास हुआ। गोसांइयों के शिव मंदिरों में पंचमुखी शिवलिंग एवं पंचावृत लिंग के अलावा सहस्रलिंग की भी स्थापना की गयी।

इस प्रकार गोसांइयों का इतिहास साहसी और शैर्य की घटनाओं से भरा पड़ा है। आलोचक यह कहकर "हिम्मत बहादुर" की आलोचना कर सकते है कि वह अविश्वसनीय चालवाज और धोखेबाज था, जिस पर विश्वास नहीं किया जा सकता कि न्तु यह आलोचना साहसी "हिम्मत बहादुर" के व्यक्तित्व का उचित मूल्यांकन नहीं है। वास्तविकता यह थी कि वह बुन्देलखंड क़ा सच्चा 'धरती पुत्र' था और येन–केन–प्रकारेण इस क्षेत्र में अपना राज्य स्थापित करना चाहता था। चालाकी, षणयंत्र तथा दावपेंच तत्कालीन राजनैतिक परिस्थितियों में आम तौर पर प्रचलित थे और युद्व तथा प्रेम दोनों में इन्हें जायज माना जाता है।

बुन्देलखंड में राज्य निर्माण उसका ध्येय था जिसकी पूर्ति के लिये उसने जो भी साधन अपनाये वे उचित ही थे। गोसांई शासनकाल में स्थापत्य कला एवं चित्रकला का भी अभूतपुर्व विकास हुआ जो उनकी कला प्रियता का द्योतक है।

परिशिष्ट

परिशिष्ट संख्या (अ)

4 सितम्बर 1803 ई. का राजा हिम्मत बहादुर गोसांई तथा अंग्रेजों के मध्य हुई शाहपुर की संधि का हिन्दी अनुवादः

संधि संख्या **LXII**

प्रश्नः यह प्रतिवेदन राजा अनूपगिरि, हिम्मत बहादुर की ओर से उसके विश्वासवनीय प्रतिनिधि नवाब बजीउद्दीन खान बहादुर तथा कर्नल जौन मिसिल बैक के द्वारा प्रस्तुत किया गया। इसका मुख आशय यह था, कि राजा अनूपगिरि को उसका समुचित उत्तर दिया जाय।

उत्तरः 4 सितम्बर 1803 ई.(18, जमादिल आखर, 1218 हिजरी, अतएव, 3, क्वार, सम्वत 1860) को गवर्नर जनरल मार्कविस वेलेजली की ओर से मिस्टर ग्रायम मरसर को इस संधि पर हस्ताक्षर करने के लिए नियुक्त किया गया। जिसने कि, ईस्ट इंडिया कम्पनी की ओर से कम्पनी के पक्ष में इस समझौते पर हस्ताक्षर किये। इसमें आठ प्रमुख धारायें थी।

प्रश्नः जो सम्मान तथा पद उसे दिया गया है, उसमें कोई हेरफेर न की जाय।

उत्तरः जबकि आपने हृदय और आत्मा से स्वयं को अंग्रेजों के साथ पूर्णतया सम्बद्ध कर दिया है, तथा अपनी शक्ति के अनुसार, बुन्देलखण्ड के प्रानत को, अंग्रेजों को दिलाने का आश्वासन दे दिया है। अतः आपको अंग्रेजी सरकार के विशेष मित्र के रूप में रखा जायेगा। क्या आपके पद व सम्मान में क्रमशः

और भी बृद्धि की जायेगी।

प्रश्नः मेरा भाई उमरावगिरि, जो कि लखनऊ में बन्दी है। उसको मुक्त कराया जाय।

उत्तरः हम नवाब बजीर से प्रार्थना करेंगे, कि वह आपके भाई राजा उमरावगिरि को छोड़ दें। चूंकि आपका भाई, पूर्णतया सरार के विरूद्ध षड़यंत्र के लिये उत्तरदायी था। अतः उसे लिये उचित जमानत दी जाय। चाहे वह व्यक्ति के द्वारा हो, या सम्पत्ति के आधार पर, एवं वह इसके लिये पूर्ण रूप से जिम्मेदारी लें, कि मुक्त होने के पश्चात, उसकी ओर से, सरकार के विरूद्ध, कोई भी ऐसा कार्य पुनः नहीं होगा।

प्रश्नः मेरे तथा मेरे परिवार के रहने के लिये, दोआब में मुझे सिकन्दरा और बिन्दकी के परगने दिये जायें। जो कि मेरे बाद मेरे वंशजों के पास भी बने रहें।

उत्तरः अब जबकि आपने स्वयं को कम्पनी के साथ जोड़ दिया है। अतः निश्चित है, कि आपको आपके पद तथा सम्मान के योग्य जागीरें दी जायेगी। आपको जागीरेंए सेवाओं के उपलक्ष में, उस समय दी जायेगी, जब कम्पनी की सरकार पूर्णतया आपकी सेवाओं से संतुष्ट हो जायेगी, तथा वह यह समझने लगेगी, कि आपकी सेवाओं का उचित मूल्य दिया जाना चाहिए। तब आपके पद व सम्मान के योग्य, जागीर आपको दे दी जायेगी।

प्रश्नः मुझे मेरी सेना तथा घुड़सवार सेना के व्यय के लिये

बुन्देलखण्ड में घाट के नीचे एक जागीर दी जाय। जिसमें कि एक किला हो, तथा जिसकी आय लगभग 20 लाख रूपये वार्षिक हो।

उत्तर: आपको, आपकी सेना के व्यय के लिये बुन्देलखण्ड में 20 लाख रूपये के मूल्य की जायदाद दी जायेगी, लेकिन यह सेना आप हमेशा, ब्रिटिश सरकार की मांग पर तुरन्त उपलब्ध करायेंगे, तथा इस सेना को सदैव तैयार रखेगें।

प्रश्न: ब्रिटिश सरकार जब अन्य भागों को जीतने के लिये आगे बढ़ेगी, तो मैं भी सदैव उसके साथ रहूंबगा। लेकिन इस सब के लिए मुझे नई सेना की आवश्यकता होगी। अतः इस सेना के खर्च के लिये मुझे अलग से धन खर्च करने के लिये जायदाद दी जाय, या इसके बदले मुझे उतना धन इस कार्या के लिये उपलब्ध कराया जाय। ताकि वह नई सेना को इस कार्य एवं उद्देश्य के लिये संगठित कर सके।

उत्तर: जब इस प्रकार के कार्य की आवश्यकता अनुभव की जायेगी, तब आपको उस सेना के अनुपात में, धन या जायदाद उपलब्ध करा दी जायेगी। जैसी की आपने इच्छा व्यक्त की है, इस संबंध में इसके भुगतान की व्यवस्था कम्पनी की सरकार करेगी।

प्रश्न: भविष्य में, जो भी नये प्रदेश जीते जायें, और उनके संबंध में जो भी समझौते कम्पनी के द्वारा, जमींदारों और सरदारों के साथ किये जायें, वह मेरे माध्यम से हों, तथा इनको आवश्यक रूप से स्वीकार किया जाये।

उत्तरः अब चूंकि आप कम्पनी के सेवक हैं। जो भी समझौता या संधि की जायेगी वह आपके माध्यम से ही होगी। उससे आपको वंचित नहीं किया जायेगा।

प्रश्नः यदि कोइ शांति संधि, पेशवा और अंग्रेज सरकार के मध्य हो, स्पष्ट रूप से उसमें, मेरी जायदाद की व्यवस्था भी कर दी जाय। जो कि मुझे कम्पनी के द्वारा दी गई है, तथा ब्रिटिश सरकार की ओर से, इसका समर्थन किया जाय। अगर यह प्रदेश किसी स्थिति में बदला जाता है, तो मुझे दी गई 20 लाख रूपये की जायदाद को, पड़ोसी राज्य के साथ बदल दिया जाए।

उत्तरः ऐसी बदलने की स्थिति आने पर, ब्रिटिश सरकार वर्तमान समझौते के अनुसार आपको दी गई जायदाद की उचित व्यवस्था कर देगी।

बजीउद्दीन खान की मुहर   हस्ताक्षर – जान मिसिल बैक

हस्ताक्षर – बजीउद्दीन खान बहादुर

परिशिष्ट संख्या (ब)

कर्नल जौन मिसेल बैक (संक्षिप्त जीवन परिचय)

कर्नल मिसिल बैक मूल रूप से डेनमार्क (योरोप) का निवासी था[1]। प्रारम्भ में फ्रान्स की सेना में भर्ती होने के पश्चात यह फ्रांसीसी सैनिक के रूप में भारत आ गया। यहां आने के पश्चात फ्रांसीसी सेना की ओर से इसने अंग्रेजों के विरूद्ध कई युद्धों में भाग लिया। कुछ समय के उपरान्त इसने फ्रांसीसी सेना को छोड़ दिया और अबध के नवाब शुजा उद्दौला की सेना में भर्ती हो गया[2]। वहां इसकी मैतरी अनूपगिरि (हिम्मत बहादुर गोसांई) से हो गई। 1764 ई. में बक्सर के युद्ध में इसने हिम्मत बहादुर के साथ मिलकर नवाब शुजाउद्दौला की ओर से अंग्रेजों से युद्ध किया। जब इस युद्ध में नवाब की पराजय हो गई, तो यह भी हिम्मत बहादुर के साथ भागकर जमुना पार करके बुन्देलखण्ड में जा बसा।

जब हिम्मत बहादुर गोसांई अली बहादुर के साथ हो गया, तब उसने मिसिल बैक को भी अली बहादुर की सेना में तोपखाने के प्रमुख संचालक के रूप में नियुक्त करा दिया। इसके पश्चात इसने बुन्देलखण्ड के समस्त युद्धों में अली बहादुर की ओर से भाग लिया। इसी मध्य इसकी मेम का मऊ के पास रगोली के युद्ध में गोला लगने से देहान्त हो गया। अली बहादुर की मृत्यु के पश्चात इसने हिम्मत बहादुर की ओर से अंग्रेजों के साथ शाहपुर में हुई संधि को अंतिम रूप दिया[3]। 1804 ई. में हिम्मत बहादुर की मृत्यु के पश्चात

---

1. पोग्सन, डब्ल्यू.आर. हि.आ.द. बुन्दे.,पृ. 126, गोरे लाल तिवारी,पृ. 280
2. मगरबी, सैयद इलियास मुहम्मद, तारीख–ए–बुन्देलखण्ड(उर्दू) पृश 115–116
3. एचीजन,सी.यू. एंगे.ट्रेटी, एण्ड सनद, जि.2, भाग–4, पृ. 225–227

इसको अंग्रेजों ने अपनी सेना की टुकड़ी का सेनापति बना दिया। 1804 से 1807 ई. के मध्य इसने बुन्देलों के दमन में अंग्रेजों को सक्रिय रूप से सहयोग प्रदान किया। 1807 ई. में वृद्धावस्था के कारण अंग्रेजों ने इसे सेवा मुक्त करके 1000/– हजार रूपया प्रतिमाह पेंशन देना स्वीकार कर लिया। पद मुक्त होने के पश्चात यह शिवरामपुर (कर्बी) में रहने लगा, जहां, 15 अक्टूबर 1819 को इसका स्वर्गवास हो गया[1]।

1. पोग्सन, पृ. 126, बांदा गजे. पृ. 180, मगरबी,पृ. 116

परिशिष्ट संख्या (स)

हिम्मत बहादुर बिरदावली

हिम्मत बहादुर बिरदावली की रचना हिंदी के प्रसिद्ध कवि पदमाकर ने की थी। पदमाकर 1792 ईस्वी 1799 ईस्वी तक हिम्मत बहादुर के यहां रहे और तभी उपरोक्त ग्रन्थ प्रणयन किया था। गोसांई अनूपगिरि उपनाम हिम्मत बहादुर और सुगरा निवासी नौने अर्जुन सिंह के बीच युद्ध 1792 इस्वी मुं हुआ था। उस समय पदमाकर हिम्मत बहादुर के दरबारी कवि थे। बिरदावली में युद्ध की तिथि एक छन्द में निम्न प्रकार दी गई है–

"संवत अठारह सै सुनो, उनचास अधिक हिए गुनौ।

वैसाख यदि तिथि द्वादसी, बुधवार यह यादसी।।"[1]

अर्थात वैसाख वदी द्वादसी बुधवार संवत् 1849 को युद्ध होना निश्चित है। हिम्मत बहादुर की प्रशंसा में कवि ने बिरदावली की रचना की। ग्रन्थ में चरित नायक की अतिश्योक्तिपूर्ण प्रशंसा की गइ है।

'हिम्मत बहादुर बिरदावली' को घटना क्रम के आधार पर पांच भागों में विभाजित किया गया है। कृष्ण भक्ति का प्रभाव रचना में स्पष्ट देखा जा सकता है। प्रथम छन्द में श्री कृष्ण की वन्दना एवं अनूपगिरि की विजय हेतु मंगल कामना की गई है। द्वितीय छन्द में हिम्मत बहादुर की विरदावली वर्णन करने के संकेत है। प्रत्येक घटना

---

1. पदमाकर ग्रंथावली– दीवान रघुनाथ प्रसाद, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, पृष्ठ 7, छन्द22

की समाप्ति पर कवि ने एक हरि गीतिका छन्द दिया है, जिसकी अन्तिम दो पंक्तियाँ हर बार इस प्रकार रखी गई है

"पृथुरिति नित सुवित दै जै जन जिति किति अनूप की।

वर बरनिये बिरदावली हिम्मत बहादुर भूप की।"

प्रथम भाग में केवल इष्ट वन्दना एवं हिम्मत बहादुर की विजय हेतु मंगल कामना के पश्चात् द्वितीय भाग में हिम्मत बहादुर गोसांई के वैभव का अतिश्योक्तिपूर्ण वर्णन किया गया है। कवि ने अनूपगिरि की तुना शिव, इन्द्र, शेषनाग, गणेश, हरिश्चन्द्र, सूर्य, चन्द्रमा आदि से की है।[1]

इसमें वर्णन किकया गया है कि हिम्मत बहादुर ने दतिया राज्य के ऊपर धावा करके कुछ भाग पर अधिकार कर लिया था। फिर छत्रसाल के देश पन्ना पर भी विजय पाई। इसके पश्चात अर्जुन सिंह के निकटस्थ केन नदी पर हिम्मत बहादुर ने ससैन्य डेरा किया। ज्योतिषियों के द्वारा युद्ध के लिए शुभ मुहुर्त शोध करवाकर हिम्मतबहादुर ने चढ़ाई की तैयारी कर दइ। आगे के ग्यारह छन्दों में अर्जुन सिंह तथा उसके सहायक क्षत्रियों के छत्तीस कुलों का वर्णन किया गया है। द्वितीय भाग लगभग 44 छंदों में समाप्त हुआ है।

तीसरा भाग 47 वाँ से छन्द उ62 तक कुल 6 छन्दों में समाप्त हो गया है। इसमें अनूपगिरि की सेना तथा उसके हाथियों और घोड़ों का वर्णन किया गया है।

---

1. वही, पृष्ठ5, छन्द 3 एवं 4 पृष्ठ 6 छंद 5 से 13 तक

हिम्मत बहादुर की सेना के घोड़ों का अतिश्योक्तिपूर्ण वर्णन किया गया है।

आगे के छन्दों में अनूपगिरि के आतंक का वर्णन किया गया है। चौथे भाग में छन्द 63 से 181 तक 119 छन्द है। यह भाग सबसे बड़ा है। इस भाग का प्रारम्भ युद्ध की विकराल भूमिका में हुआ है। अनूपगिरि के सैन्य संचालन का संकेत कर कवि ने पुष्पिका के पश्चात ओ प्रस्थान करने का वर्णन किया है। अनूपगिरि और अर्जुन सिंह पमार की सेनाओं के निकट पहुंचकर युद्ध का वर्णन किया गया है। कवि ने हिम्मत बहादुर के प्रतिद्वन्द्वी अर्जुन सिंह की वीरोचित भावनाओं का स्वाभाविक वर्णन किया है। क्षत्रियों के कर्तव्यों एवं धर्मो पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला गया है।

अर्जुन सिंह से युद्ध करते हुए हिम्मत बहादुर के दो सरदार मानधाता एवं जुल्फिकार के मारे जाने का उल्लेख करते हुए कवि ने हिम्मत बहादुर के सात भतीजों उत्तमगिरि, गंगागिरि, दिलावर जंग, राजगिरि, जगत बहादुर, सरूपगिरि तथा सुन्दर गिरि के वीरतापूर्ण युद्ध का वर्णन किया है। हिम्मत बहादुर की सेना के अनेक वीर सरदारों के युद्ध का वर्णन भी विस्तारपूर्वक किया गया है। हिन्दु पति के नाम से एक पमार सरदार के सम्बन्ध में पदमाकर ने स्पष्ट उल्लेख किया है कि इसका अर्जुन सिंह से पूर्व का बैर था, जिसका स्मरण कर वह अपने चाचा अर्जुन सिंह के सम्मुख युद्ध के लिए प्रस्तुत हुआ। हिन्दूपति के पुत्र तथा अन्य सहयोगियों के साथ अर्जुन सिंह के तुमुल युद्ध का वर्णन किया गया है।

परिशिष्ट संख्या (द)

गोसांई शासकों का वशंवृक्ष
(हिम्मत बहादुर बिरदावली में प्राप्त)
राजेन्द्र गिरि गोसांई
(यह पुत्र नही ये वरन चेले थे)
उमराव गिरि
अनूप गिरि
(हिम्मत बहादुर)
नरेन्द्र गिरि
(मस्लिम तवायफ से
उत्पन्न)
इनकी औलादों का कोई
नहीं है।
कंचन गिरि
इनके बहुत सारे
वारिस है
ये छः पुत्र ब्रहमणी से थे जिसमें उमराव गिरि ने वाह किया था
ये तीनों पुत्र (तवायफ) स्त्री
से उत्पन्न हुये
1
गंगागिरि
(दिलावर जंग)
2
जगत
गिरि
3
हंसराज
गिरि
4
जीवन
गिरि
5
राज
गिरि
6
उत्सव
गिरि
7
गंगा
बक्श
8
सुंदर
गिरि
9
सुगंध
गिरि
इसमें 1, 4 और 5 के बंशज अब तक पाये जाते है।
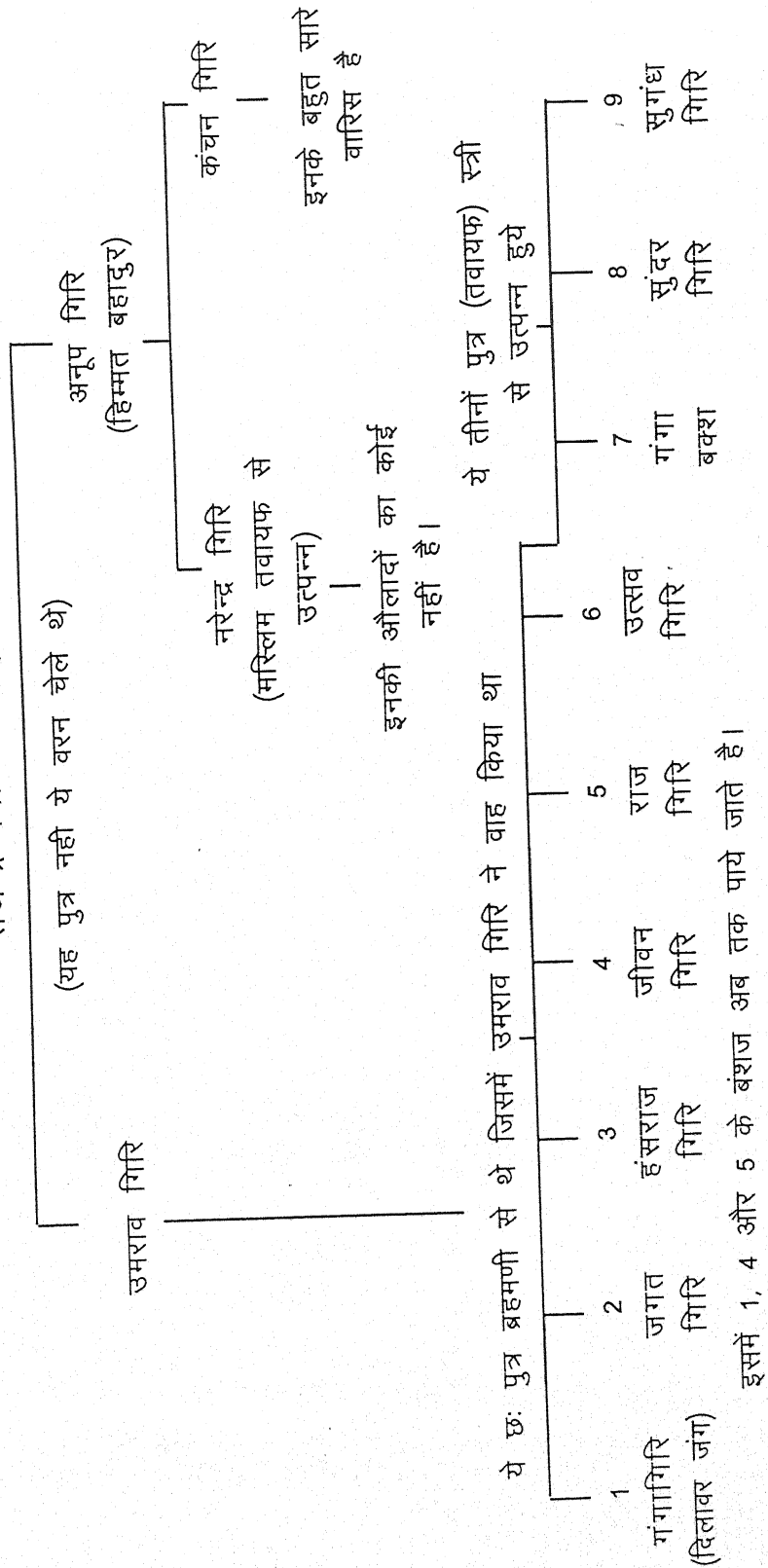
संदर्भ ग्रंथ सूची

(BIBLIOGRAPHY)

संदर्भ ग्रंथ सूची (BIBLIOGRAPHY)

प्राथमिक संदर्भ

राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली से शोध ग्रंथ में प्रयुक्त फॉरिन डिपार्टमेन्टल सीक्रेट कन्सल्टेशन एवं पोलटिकल प्रोसीडिंग्स के प्रमुख संदर्भ :

1. फॉरेन सीक्रेट कन्सल्टेशन एवं पॉलटिकल प्रोसीडिंग्स– दिनांक 6 अप्रैल 1778

2. फॉरेन सीक्रेट कन्सल्टेशन एवं पॉलटिकल प्रोसीडिंग्स– दिनांक 2 नवम्बर 1778

3. फॉरेन सीक्रेट कन्सल्टेशन एवं पॉलटिकल प्रोसीडिंग्स– दिनांक 25 नवम्बर 1778

4. फॉरेन सीक्रेट कन्सल्टेशन एवं पॉलटिकल प्रोसीडिंग्स– दिनांक 7 जनवरी 1779

5. फॉरेन सीक्रेट कन्सल्टेशन एवं पॉलटिकल प्रोसीडिंग्स– दिनांक 31 मई 1794

6. फॉरेन सीक्रेट कन्सल्टेशन एवं पॉलटिकल प्रोसीडिंग्स– दिनांक 6 मार्च 1795 ई.

7. फॉरेन सीक्रेट कन्सल्टेशन एवं पॉलटिकल प्रोसीडिंग्स– दिनांक 21 मार्च 1795 ई.

8.	फॉरेन सीक्रेट कन्सल्टेशन एवं पॉलटिकल प्रोसीडिंग्स–	दिनांक 27 मार्च 1795
9.	फॉरेन सीक्रेट कन्सल्टेशन एवं पॉलटिकल प्रोसीडिंग्स–	दिनांक 12 मई 1795
10.	फॉरेन सीक्रेट कन्सल्टेशन एवं पॉलटिकल प्रोसीडिंग्स–	दिनांक 22 मई 1793
11.	फॉरेन सीक्रेट कन्सल्टेशन एवं पॉलटिकल प्रोसीडिंग्स–	दिनांक 22 मई 1795 ई. (46 संख्या 18 एवं 19)
12.	फॉरेन सीक्रेट कन्सल्टेशन एवं पॉलटिकल प्रोसीडिंग्स–	दिनांक 29 मई 1795 (पत्र संख्या –6)
13	फॉरेन सीक्रेट कन्सल्टेशन एवं पॉलटिकल प्रोसीडिंग्स–	दिनांक 8 जून 1795 पत्र संख्या 6
14	फॉरेन सीक्रेट कन्सल्टेशन एवं पॉलटिकल प्रोसीडिंग्स–	दिनांक 6 जुलाई 1795 पत्र संख्या 4,6
15.	फॉरेन सीक्रेट कन्सल्टेशन एवं पॉलटिकल प्रोसीडिंग्स–	दिनांक 20 जुलाई 1795 पत्र संख्या 8,9,10
16.	कलेन्डर ऑफ पर्शियन करोस्पोन्डेन्स–	राष्ट्रीय अभिलेखागार (1953) जिल्द 8,9,10, एवं 11
17.	एशियाटिक एनुअल रजिस्टर	राष्ट्रीय अभिलेखागार नई दिल्ली(1803–1805)

18. इंग्लिश रिकार्डस ऑफ मराठा हिस्ट्री — पूना रेजिडेंसी करोसपोंडेंस

समकालीन ग्रंथ

1. हदीकतुल अकलीम : जुर्नद बिलग्रामी द्वारा रचित (फारसी)

2. हिम्मत बहादुर : पदमाकर द्वारा रचित सम्पादक भगवानदीन नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा 1908 में प्रकाशित

3. पेशवा दफ्तर : (न्यू सीरीज) भाग–1, सम्पादक, पी. एम. जोशी, गवर्नमेंट सेन्ट्रल प्रेस बम्बई द्वारा 1957 में प्रकाशित

द्वितीयक संदर्भ

अंग्रेजी ग्रंथ

4. ए हिस्ट्री ऑफ बुन्देलाज : डब्ल्यू.आर. पोग्सन, बैप्टिस्ट मिशन प्रेस सरकुलर रोड कलकत्ता से 1828 में प्रकाशित।

5. बाजीराव फर्स्ट दी ग्रेट पेशवा : सी.के. श्रीनिवासन, एशिया पब्लिशिंग हाउस, बम्बई से प्रकाशित

6. झांसी डॅयूरिंग द ब्रिटिश रूल : पाठक, एल.पी., रामानन्द विद्या भवन, नई दिल्ली, कालका जी द्वारा 1987 में प्रकाशित।

7. लेटर मुगल भाग–2 : विलियम इर्विन, एम.सी. सरकार द्वारा 1922 में कलकत्ता से प्रकाशित

8. ए कलेक्शन ऑफ ट्रेटीज एण्ड ऐंजमेंट एण्ड सनदस : भाग–5 / (1909)भाग–7(1931) कलकत्ता से प्रकाशित

9. ए डिक्शनरी ऑफ इण्डियन हिस्ट्री : सच्चिदानन्द भट्टाचार्य, हिन्दी समिति लखनऊ द्वारा प्रकाशित।

10. इण्डियन हिस्ट्रीकल रिकार्ड : कमीशन प्रोसीडिंग भाग–2, नागपुर 1950 में प्रकाशित

11. बुन्देलखण्ड अंडर द मराठा : अंधारे, बी.आर.; विश्व भारतीय प्रकाशन नागपुर से 1984 में प्रकाशित

12. हिस्ट्री ऑफ द मराठाज : डफ जेम्स ग्रांट एसोसिएट पब्लिकेशन नई दिली 1978

13. मेमोयर ऑफ बुन्देलखण्ड : फ्रेंकलिन जेम्स लंदन 1825 ईस्वी

17. ए हिस्ट्री आफ द टाइम एंड फाल ऑफ द मराठा इन बुन्देलखण्ड : गुप्ता भगवानदास नेहा, प्रकाशन, नई दिली से 1987 में प्रकाशित

15. इंगलिश समरीन ऑफ अखबारत्स ऑफ नवाब अली बहादुर कैप्स : न्यून लेटर्स (1769–99) नवाब मीर निजाम अली संपादकः एफ.ए. ए. गनवी एवं एम.एल. भार्गव, पब्लिकेशन ब्यूरों, इन्फार्मेशन डिपार्टमेंट, उ.प्र. लखनऊ 1959

16. इंग्लिश रिकार्डस ऑफ मराठा हिस्ट्री पूना रेजिडेंसी कारसपोडेंस : भाग–1(1936) भाग–8(1943) संपादकः यदुनाथ सरकार, गर्वनमेन्ट सेन्ट्रल प्रेस मुम्बई

17. हिस्टोरिकल पेपर्स रिलेटिंग टू महादजी सिंधिया : सरदेसाई जी.एस. ग्वालियर (1937)

18. ए स्टडी इन दी मराठा डिप्लोमेसी : वर्मा डा. एस.पी. शिव लाल अग्रवाल एंड कंपनी, आगरा–1958

19. फाल आफ दी मुगल एम्पायर : सर यदुनाथ सरकार– भाग–2(1950) भाग–3(1952) भाग–4(1950)एम.सी. सरकार कलकत्ता

20. शुजाउद्दौला : श्रीवास्तव आशीर्वादी लाल भाग–1(1961) भाग–2(1974) शिव लाल अग्रवाल एंड कं. आगरा

21. न्यू हिस्ट्री ऑफ दी मराठाज : सरदेसाई जी.एस. भाग–2(1948) भाग–3(1948) फोनिक्स पब्लिकेशन, बंबई 1978

22. ए हिस्ट्री आफ दी ब्रिटिश डिप्लोमेंसी एट दी कोर्ट ऑफ दी पेशवाज : आर.डी. चौकसे, इर्विन रोड, पूना, 1951

23. एंग्लो मराठा रिलेशन : डा. एस.एन. सेन कलकत्ता–1961

24. दी रिबोल्ट आफ 1857 इन बुन्देलखण्ड : सिन्हा एस.एन. अनुज पब्लिकेशन लखनऊ 1982

25. एनसिएन्ट जियोग्राफी ऑफ इंडिया : कनिंधनम इण्डोलोजिकल बुक हाउस, बनारस 1963

26. हिस्ट्री आफ इंडिया एज टोल्ड बाई इट्स ओन हिस्टोरियन : इलियट एंड डाउसन, भाग1,5,6,78, किताब महल इलाहाबाद से 1964 में प्रकाशित

17. पेशवा बाजीराव फर्स्ट एंड मराठा एक्सपेंशन : ही.जी. दिधे, कर्नाटक पब्लिकेशन हाउस बंबई से 1944 में प्रकाशित

हिन्दी ग्रंथ

1. महाभारत : प्रथम खण्ड (सभा पूर्व)गीता प्रेस, गोरखपुर

2. बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास : गोरे लाल तिवारी, काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा सम्वत् 1990(1933 ई.) में प्रकाशित।

3. अवध के प्रथम दो नवाब : श्रीवास्तव, आशीर्वादी लाल, शिवलाल, एण्ड कं. आगरा से 1954 ई. में प्रकाशित।

4. शुजाउद्दौला : दोनों भाग श्रीवास्तव, आशीर्वादी लाल, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कं. द्वारा आगरा से प्रकाशित 1961–1974

5. मराठों का नवीन इतिहास : सरदेसाई, जी.एस. भाग–2, भाग–3, बम्बई से 1948 में प्रकाशित।

6. मुगल साम्राज्य का पतन : चारों भाग सरकार यदुनाथ शिवलाल एण्ड कं. आगरा से 1964 में प्रकाशित।

7. आइने–अकबरी : भाग–2 रायल एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल–1949 ईस्वी

8. बुन्देलों का इतिहास : भगवानदास श्रीवास्तव, भगवान दास खरे, विचार प्रकाशन दिल्ली से 1982 में प्रकाशित

9. बाजीराव मस्तानी और उसके वंशज नवाब बांदा : गुप्ता, भगवानदास, विद्या मन्दिर, ग्वालियर से 1983 में प्रकाशित।

10. हिस्टोरिकल पेपर्स ऑफ सिंधिया ऑफ ग्वालियर : सतारा, हिस्ट्रीकल रिसर्च सोसायटी सतारा द्वारा प्रकाशित

11. महाराजा छत्रसाल : गुप्ता, वी.डी. शिवलाल एण्ड कं. आगरा द्वारा 1958 में प्रकाशित।

12. अकबर महान : (हिन्दी) बी.ए. स्मिथ, एस.चांद एण्ड क. दिल्ली द्वारा 1966 में प्रकाशित।

13. चन्देल और उनका राजत्व काल : मिश्रा, के.सी., का. ना. प्र. सभा से सम्वत् 2011(1935 ई.) में प्रकाशित।

14. बुन्देलखण्ड का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक अनुशीलन : ढेकुला रामस्वरूप गोविन्द नगर, कानपुर से प्रकाशित।

15. बुन्देली ज्ञान एवं संस्कृति : बलभद्र तिवारी , सागर–1995

16. बुन्देलखण्ड का इतिहास : दीवान प्रतिपाल सिंह, संपादक लाल भगवानदीन, हित चिंतक प्रेस, वाराणसी संवत् 1985

17. भारत में अंग्रेजी राज : सर सुंदर लाल, ओंकार प्रेस, इलाहाबाद द्वितीय संस्कारण–1938

18. अठारवीं सदी के हिंदी पत्र : डा. काशी शंकर केलकर, जवाहर लाल पुस्तकालय, मथुरा–1970

19. विश्वबसकरन : रामचरण हयारण मित्र, झांसी 1984

20. संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह दिनकर, राजपाल एंड संस, नई दिल्ली–1956

मराठी ग्रंथ

1. इतिहास संग्रह (ऐतिहासिक टिपणें) : भाग–2, सम्पादकः द.ब. पारसनीस, सतारा।

2. ऐतिहासिक किरकोल प्रकरणें : प्रकरण पहला, अलीबहादुराचा, पत्र व्यवहार, इतिहास संग्रह भाग2, अंक 6–10

3. ऐतिहासिक पत्रें यादी वगैरे : गो.स. सरदेसाई, काले, वाकस्कर, चित्रशाला प्रेस पुणे,1930

4. ऐतिहासिक संकीर्ण साहित्य : खण्ड चौथा, द.वा. पोतदार, मजूमदार, भारत इतिहास संशोधक मण्डल, पुणे

5. पवार धराण्याचा इतिहासाची साधनें : सम्पादकः मा.वि. गुजर, प्रतिभा प्रिंटिंग प्रेस पुणें, 1940

6. पेशव्याची बखर : कृष्ण विनायक सोहनी विरचित प्रकाशकः का.ना. साने. 1925।

7. पेशेदफ्तरातून निवडलेले कागद : भाग9,21,27,30, गवर्नमेंट सेण्ट्रल प्रेस, बम्बई।

8. पेशवा दफ्तर (न्यू सीरीज) : भाग1, सम्पादक, पी.एम. जोशी, गवर्नमेंट सेण्ट्रल प्रेस बम्बई, 1957।

9. पेशवा दफ्तर (न्यू सीरीज) : हिंदी साधनें संपादकः डा. रघुवीर सिंह, पुराभिलेख विभाग महाराष्ट्र, बम्बई, 1979।

बालाजी बाजीराव द्वितीय : भाग–3, सेलेक्शंस, फ्राम दी सतारा राजाज एण्ड दी पेशवा डायरीज भाग 5, गणेश चिमनाजी बोड, 1908।

गजेटियर्स

1. स्टेटिस्टिकल, डिस्क्रिप्टिव एंड हिस्टारिकल एकाउंट आफ द नार्थ वेस्ट प्रोविन्सेस आफ इडिया : एटकिन्सन. ई.टी. वाल्यूम–1 (बुन्देलखण्ड) इलाहाबाद 1874

2. इंपीरियल गजेटियर : यूनाइटेड प्रोविन्सेज, इलाहाबाद,1905

3. झाँसी गजेटियर : जोशी ईला बसन्ती, लखनऊ, 1965

4. बांदा गजेटियर : ड्रेक ब्रोकमैन, इलाहाबाद, 1909

5. हमीरपुर गजेटियर : ड्रेक ब्रोकमैन, इलाहाबाद, 1909

6. जालौन गजेटियर : ड्रेक ब्रोकमैन, इलाहाबाद, 1909

7. छतरपुर गजेटियर : लुअर्ड सी.ई; लखनऊ, 1907

8. ओरछा गजेटियर : लुअर्ड सी.ई; लखनऊ, 1907

9. सागर गजेटियर : रसेल आर.वी; इलाहाबाद, 1906

उर्दू

1. तवारीखे बुन्देलखण्ड : श्याम लाल मुंशी, नौगांव से 1884 में प्रकाशित।

2. तवारीखे बुन्देलखण्ड : सैयद इलियास, भागीरथी, उर्दू अकादमी लखनऊ से 1978 में प्रकाशित।

पत्रिकायें

1. जरनल एशियाटिक सोसाइटी बंगाल, 1978 ई.

2. बृहन्महाराष्ट्र परिषद स्मारिका, 1977–78 ई.

3. वार्षिक पत्रिका बुन्देलखण्ड महाविद्यालय, 1984

4. आजकल (उर्दू) फरवरी, 1958

5. आजकल (उर्दू) मई, 1959